
चन्द्रामाम
मा बच्चों का मासिक प
'64
6



बहुत दिन पहले चम्पा नगर में एक खुशहाल ब्राह्मण परिवार रहता था। उस ब्राह्मण की एक ही लड़की थी। उसका नाम था स्वर्णलता। एक ज्योतिषी ने उसकी जन्म कुण्डली देख कर उस ब्राह्मण को यह बताया:-

"इस लड़की का व्याह एक पराक्रमी राजा से होगा; और इसके यहाँ दो लड़के पैदा होंगे। उन दोनों में एक तो चक्रवर्ती बनेगा, और दूसरा संसार से विरक्त होकर सन्यासी बन जाएगा।"

ब्राह्मण अपनी लड़की के भविष्य की बात सुन कर बहुत खुश हुआ।

जब लड़की बड़ी हुई, तो दूसरे ब्राह्मण-परिवार उसे देख कर आश्चर्य में पड़ गए। लड़की बड़ी ही सुन्दरी और रूपवती थी। कुछ दिनों के बाद ब्राह्मण अपनी लड़की को लेकर चम्पा नगर से राजधानी पाटलीपुत्र चला गया।

उस समय पाटलीपुत्र का राजा बिन्दुसार था। उसके रनवास में कई रानियाँ थीं। सभी रानियों के राजकुमार थे। पटरानी के बड़े लड़के का नाम था वीरसागर।

एक दिन वह ब्राह्मण अपनी लड़की को साथ लेकर राजा के दर्शन करने गया। दर्शन कर चुकने के बाद उसने राजा से यह प्रार्थना की- "महाराज ! मेरी लड़की गुण-सौन्दर्य में सब तरह से आप के योग्य है; इसलिए आप इसे अपनी रानी बना लीजिए।"

राजा स्वर्णलता को देख कर मुग्ध हो गया और उसने ब्राह्मण की बात मान कर स्वर्णलता को अपनी रानी बना लिया। स्वर्णलता भी अन्य रानियों के साथ अन्तःपुर



में रहने लगी। कुछ दिनों के बाद उसे भी रहने के लिए अलग एक महल मिल गया।

स्वर्णलता के अन्तःपुर में आते ही दूसरी रानियों में हलचल मच गई। गुण-सौन्दर्य के कारण स्वर्णलता के प्रति दूसरी रानियों में ईर्ष्या दिन प्रति दिन बढ़ती गई। वे सब मिल कर यह सोचने लगीं, कि किस तरह राजा के दिल में स्वर्णलता के लिए घृणा पैदा की जाय ? यह सब कुछ देख कर भी राजा का मन न बदला और वह उसके गुण-सौंदर्य पर मुग्ध ही बना रहा।

कुछ दिनों के बाद स्वर्णलता के अशोक और विगताशोक नाम के दो पुत्र पैदा हुए। लेकिन अब परिस्थिति बदल गई थी। दूसरी रानियों का षड़यन्त्र-विष अपना काम कर चुका था। इसलिए राजा स्वर्णलता और उसके दोनों पुत्रों से नफरत करने लगा। इससे वे माँ और बेटे बहुत भारी कष्ट में जा पड़े।

राजा बिन्दुसार को भिक्षु पिङ्गल वत्स पर बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन राजा ने उनको बुला कर पूछा-"महात्मा ! इस विशाल साम्राज्य को मेरे बाद कौन कायम रखेगा ? मेरे पुत्रों में कौन इसके योग्य है ? आप इनकी परीक्षा लेकर बताने की कृपा करें।"

नगर के बाहर वाले बाग में राजकुमारों की परीक्षा का प्रबन्ध किया गया। राजा और पिङ्गल वत्स भी आ गए। सभी राजकुमार वहाँ पर मौजूद थे। लेकिन अशोक नहीं आया था। कारण उसको परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण नहीं भेजा गया था।

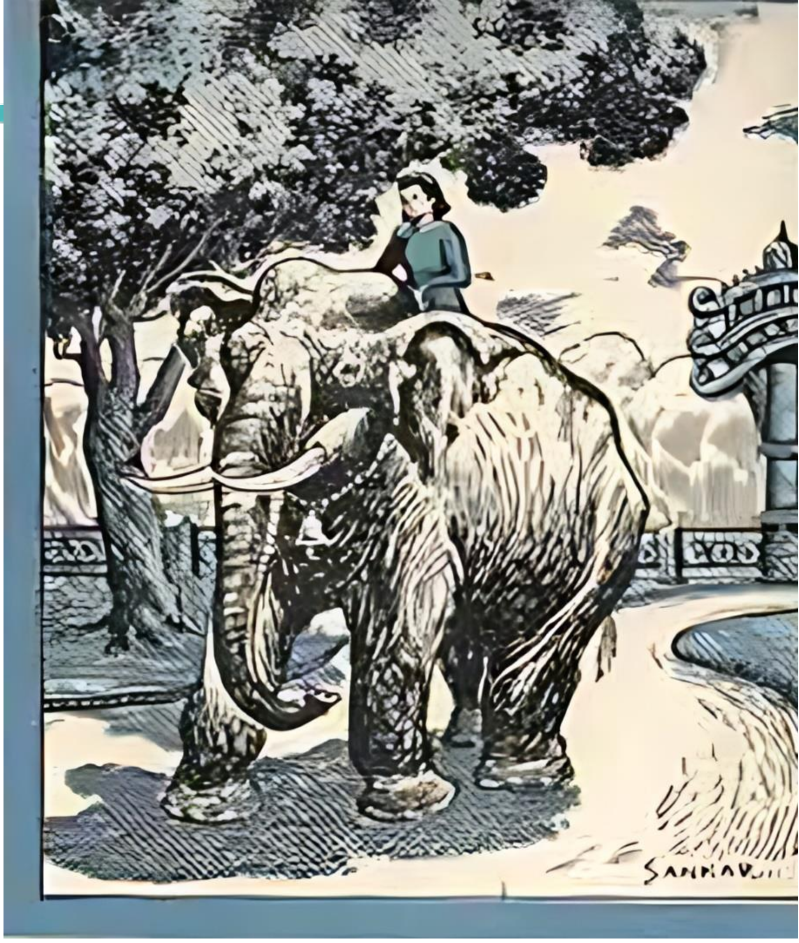
स्वर्णलता ने अशोक को बुला कर कहा-"बेटा, सभी राजकुमार परीक्षा देने स्वर्ण-मण्डल में गए हैं; क्या तुम परीक्षा-मण्डल में नहीं जाओगे ?"

इस पर अशोक ने कहा-"माँ ! जब पिताजी मेरा मुँह देखना पसन्द नहीं करते, तो ऐसी हालत में में कैसे उनके सामने जाकर परीक्षा दूँ ?" स्वर्णलता ने जाने के लिए उससे आग्रह किया। अशोक को माँ की बात माननी पड़ी। चलते समय स्वर्णलता ने भात में दही मिलाया और एक मिट्टी के बरतन में भरके उसे दे दिया।

जाते हुए रास्ते में अशोक को मन्त्री का लड़का राधागुप्त मिला। अपने दोस्त को शीघ्र ही स्वर्ण मण्डल पहुँचाने के लिए वह कोई बढ़िया वाहन ढूँढने लग गया। लेकिन उसे

वहाँ कोई उत्तम वाहन नहीं मिल सका। आखिर राजा के हथसार में उसे एक बूढ़ा हाथी दीख पड़ा। उसने जल्दी से उसी पर अशोक को बिठा कर स्वर्ण मण्डल में भेज दिया।

जब वह स्वर्ण-मण्डल में पहुँचा, तो सभी राजकुमार अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए थे। उसके बैठने के लिए कोई भी आसन खाली नहीं था। इसलिए वह धरती पर ही बैठ गया। किसी को अशोक के वहाँ आ जाने की खबर भी नहीं हुई। सभी



राजकुमर परीक्षा देने की खुशी में मगन थे।

पिङ्गल वत्स ने सभी राजकुमारों की ओर एक बार देखा। उनको अशोक के मुख पर सभी राजकुमारों से ज्यादा कान्ति दीख पड़ी। लेकिन वे जानते थे कि बिन्दुसार को अशोक से कड़ी नफरत है। वे असमञ्जस में पड़ गए। अगर वे सच्ची बात बताते हैं तो राजा के गुस्सा हो जाने की सम्भावना है। लेकिन हालत ऐसी थी कि उनको सच्ची बात कहने को मजबूर हो जाना पड़ा। उन्होंने कहा-"राजन, इन सब राजकुमारों में जो राजकुमार बढ़िया वाहन पर चढ़ कर यहाँ



आया हो, वही आप के बाद इस विशाल साम्राज्य का राजा होने के योग्य है।" राजकुमारों में कुछ सुन्दर घोड़ों पर चढ़ कर आए थे, और कुछ रथों पर। चढ़ कर महात्मा पिङ्गल वत्स की बातें सुनते ही हरेक राजकुमार ने यही समझा-"में ही अति उत्तम वाहन पर चढ़ कर आया हूँ। इसलिए में ही इस विशाल साम्राज्य का राजा बनूँगा।"

राजा ने सोचा-"मेरे बड़े लड़के वीरसागर को लक्ष्य करके ही पिङ्गल वत्स ने यह बात कही है।" फिर भी पिङ्गल वत्स से उसने अपनी बात स्पष्ट करने की प्रार्थना की।

इस पर पिङ्गल वत्स ने कहा-"राजन ! बूढ़े हाथी का जो गौरव है, वह किसी और वाहन का नहीं हो सकता है। इसलिए ऐसे हाथी पर चढ़ कर आना कोई मामूली बात नहीं।"

इस फैसले से राजा का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने गुरु पिङ्गल वरस से प्रार्थना की-"गुरुदेव, आप एक बार और इन राजकुमारों की परीक्षा लेने की कृपा करें।"

तब पिङ्गल वत्स यों बोले-"राजन, यहाँ आए हुए सभी राजकुमारों में जिस किसी का बाहन, आसन और भोजन अति उत्तम है, वही आप के बाद इस राज्य के राज्य- सिंहासन पर बैठने लायक है।"

राजा को यह सब न तो अच्छी लगी, और न वह इसका अर्थ समझ सका। लेकिन सभी राजकुमार अपने-अपने वाहन, आसन और भोजन आदि को देख कर मन ही मन कहने लगे-"बस, अब हम जीत गए।" क्योंकि उनके आसन बहुमूल्य थे; उनके भोजन पदार्थ भी साधारण नहीं थे, और उनके बर्तन भी सोने चाँदी के बने हुए थे।

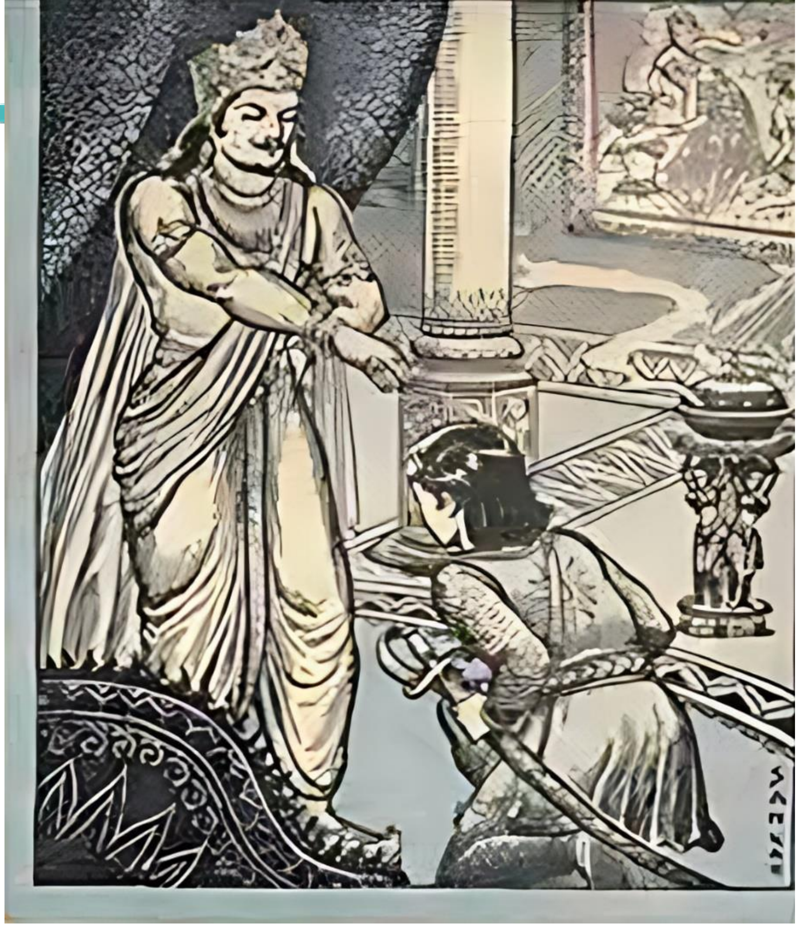
अशोक के पास यह सब कुछ नहीं था। उसका वाहन तो था वह बूढ़ा हाथी, आसन

धरती, भोजन था दही मिला हुआ मामूली भात। बर्तन था मिट्टी का बना हुआ। यह सब दूसरे राजकुमारों की बहुमूल्य चीजों के सामने अत्यन्त तुच्छ जान पड़ते थे। लेकिन गुरु पिङ्गल वत्स ने अपना विचित्र फैसला सुनाया-"अशोक की ये चीजें साधारण नहीं हैं; यही मेरा फैसला है।" ऐसा कह कर वह चुप हो गया।

बिन्दुसार को अशोक से घृणा थी, इसीसे वह अशोक को राज्य कार्य में कोई भाग नहीं लेने देता था। लेकिन अशोक को बहुत जल्द ही अपनी योग्यता दिखाने का एक अच्छा मौका मिल गया।

पड़ोस के तक्षशिला नगर में एकाएक क्रान्ति फूट पड़ी। अशोक पिता की आज्ञा लेकर उस क्रान्ति का दमन करने तक्षशिला पहुँचा। वहाँ जाकर उसने बड़ी चातुरी से उस क्रान्ति को दबा दिया और नगर में शान्ति स्थापित कर दी। कुछ दिनों के बाद वह विजयी बन कर वापस आ गया।

बिन्दुसार के बड़े लड़के वीरसागर का स्वभाव बड़ा ही कटु था। एक दिन वह प्रधानमन्त्री से बातों-बात



लड़ पड़ा और कोई चीज़ उठा कर उसके माथे पर मार दी। मन्त्री के माथे में चोट आई और उसे गुस्सा आ गया-"वाह! अभी तो राजा भी नहीं बने और बड़े-बूढ़ों पर हाथ उठाने लग गए हो ? राजा बन जाने पर तो प्रजा को कच्चा ही चबा डालोगे ? तो देखता हूँ- तुम राज्य-सिंहासन पर कैसे बैठते हो ?" ऐसा कह कर वह गुस्से से बाहर चला गया।

उस के बाद प्रधानमन्त्री अपने साथियों से मिल कर षड़यन्त्र करने लगा। इसलिए सभी लोग वीरसागर के विरुद्ध हो गए। तक्षशिला में फिर से क्रान्ति मची। अब की बार राजा ने वीरसागर को उसका दमन करने के

लिए भेजा। लेकिन वीरसागर से कुछ नहीं हो सका और सारे नगर में अव्यवस्था फैल गई।

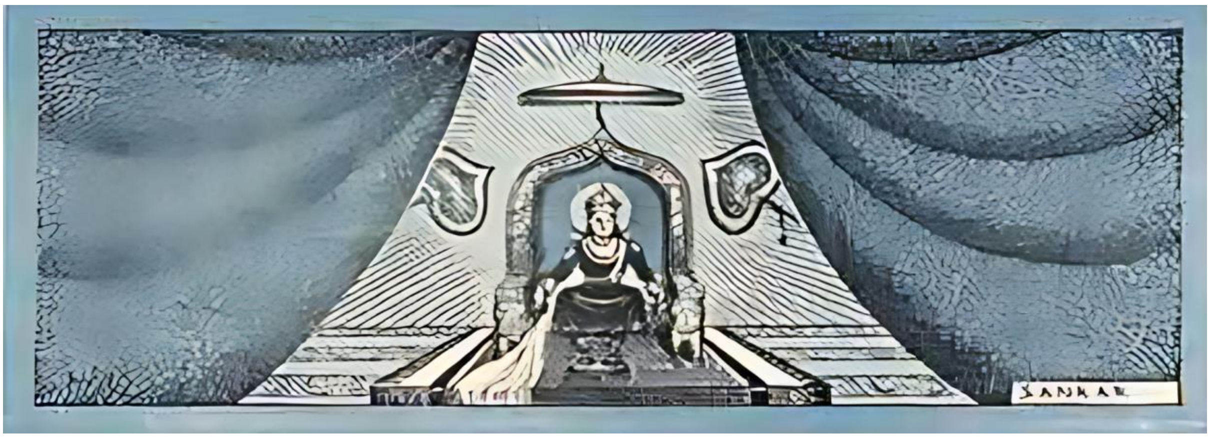
इतने में बूढ़ा सम्राट बिन्दुसार बीमार पड़ा। उसने अपने मन्त्रियों को बुला कर आज्ञा दी-"तुरन्त अशोक को तक्षशिला भेज दो और बीरसागर को यहाँ बुला लो। मैं अपने हाथों से उसके माथे पर राज मुकुट पहना कर उसे राजा बनाना चाहता हूँ।"

मन्त्रियों को राजा की यह बात अच्छी नहीं लगी। लेकिन राजा के सामने वे इसका विरोध कैसे करते ? आखिर उन लोगों को एक उपाय सूझ गया और वे राजा से जाकर बोले-"महाराज, अशोक अभी बीमार है। स्वस्थ्य होते ही हम उसे वहाँ भेज देंगे और वीरसागर को बुला लेंगे।" यों उन्होंने अशोक को भी रोगी बना दिया।

यह देख कर बिन्दुसार मन में सोचने लगा-"मेरी एक भी इच्छा पूरी नहीं हुई।" उसकी बीमारी दिन पर दिन बढ़ती गई।

एक दिन मन्त्रियों ने अशोक को खूब सजा कर बिन्दुसार के सामने ले आकर खड़ा कर दिया; फिर वे कहने लगे-"महाराजा, इस समय तो आप इसी को सिंहासन पर बिठा दीजिए। बीरसागर के वापस आने पर हम उसको गद्दी पर बिठा देंगे।" ऐसा कह कर वे राजा के मुख की ओर देखने लगे।

राजा मरणावस्था में था। इसलिए क्रोध और रोग की पीड़ा के कारण वह कुछ कह नहीं सका। लाचार होकर अन्त में उसने अशोक के माथे पर अपने हाथों से अपना राजमुकुट रख दिया। यों अशोक राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया गया।





वाजिब फैसला

अकबर बादशाह के दरबार में एक दिन सिपाही चार अपराधियों को पकड़ कर लाए और उन्हें बादशाह के सामने खड़ा कर दिया। बादशाह ने उन में से एक से कहा-"क्या यह काम तुम्हार योग्य था ?" इतना कह कर उसे छोड़ दिया। दूसरे आदमी के केवल कान उमेठ दिए, और उसे भी छोड़ दिया। तीसरे को सिपाहियों से गर्दना दिलवा कर दरबार से निकलवा दिया; लेकिन चौथे आदमी को उसने कड़ी सजा दी। सजा यह थी कि-"उसके नाक कान काटकर, सिर मुड़वा कर, देह में राख मलवाकर, और आधे मुँह में कालिख पोत कर, गधे पर चढ़ा कर उसे शहर की सभी सड़कों गलियों में घुमाया जाय।" बादशाह ने हुक्म दिया।

यह फैसला सुन कर दरबार के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए और काना-फूसी करने लग लगे। कुछ थोड़े-से लोग न्याय की प्रशंसा भी करते थे। लेकिन बादशाह को मान हो गया, कि कुछ लोगों को उसके फैसले से सन्तोष नहीं हुआ है। ठीक उसी समय एक आदमी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-"महाप्रभो ! आप के न्याय में हम को कोई दोष नजर नहीं आ रहा है। लेकिन इन चारों ने एक ही तरह का अपराध किया था। फिर इन्हें अलग-अलग सजा क्यों दी गई, यही बात हमारी समझ में नही आ रही है।"

इस पर बादशाह ने अपने चार गुप्तचरों को उन चारों अपराधियों के पीछे लगाया, और अगले दिन दरबार में आकर विस्तारपूर्वक विवरण देने का हुक्म दिया। चारों गुप्तचर चले गए और दरबार बरखास्त हुआ।

अमर कुमार

दूसरे दिन दरबार में चारों गुप्तचर हाजिर हुए। दरबार में बैठे सभी लोग उनका विवरण सुनने के लिए उत्सुक थे। पहले गुप्तचर ने बादशाह के सामने हाथ जोड़ कर कहा-"महाप्रभो! आपने जिस अपराधी को एक ही बात कह कर छोड़ दिया था, वह उसे नहीं सह सका और घर जाते ही विष खाकर मर गया।" दूसरे गुप्तचर ने कहा-"महाराज, जिसे आपने सिफ कान उमेट कर भेज दिया था, वह अपना घर-द्वार छोड़ कर कहीं चला गया। तीसरा गुप्तचर यों कहने लगा-"हजूर, आपने जिसे गर्दना देकर दरबार से निकलवा दिया था, वह शर्म के मारे घर में ही बैठ गया है; और उसने दोस्त मित्रों तथा रिश्ते-नाते के लोगों से मिलना-जुलना तक बन्द कर दिया है।"

चौथे गुप्तचर ने अपना विवरण यों पेश किया-"महाप्रभो! चौथे अपराधी का हाल बड़ा विचित्र है। नाक कान कटवा कर, सिर मुड़वाकर, और गधे पर बिठा कर जिस समय सिपाही उसको गलियों में घुमाने ले चले तो उसके पीछे बड़ी भीड़ लग गई। यह देख कर उसकी पत्नी भी तमाशा देखने आ गई। तब उस अपराधी ने अपनी पत्नी को पास बुला कर कहा-"जल्दी घर जाकर मेरे स्नान का प्रबन्ध कर। ये सिपही तो मुझे इस तरह तङ्ग करते ही रहेंगे; लेकिन मैं अभी थोड़ी देर में इनसे पिण्ड छुड़ा कर घर आ जाता हूँ। उस आदमी को तो जरा भी शर्म नहीं थी।" ऐसा कह कर वह गुप्तचर चुप हो गया। उसकी बातें सुन कर दरबार के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए और कहने लगे-"देखा, बादशाह का फैसला वाजिब था।"





जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था उस समय भगवान बोधिसत्व देवेन्द्र के पद पर सुशोभित थे।

ब्रह्मदत्त नवयुवक था। भगवान पर उसे श्रद्धा नहीं थी। यों मानव के प्रति भी उसका बर्ताव बड़ा विचित्र था। बूढ़े आदमी, बूढ़े जानवर और पुरानी चीजों को देखते ही वह जल-भुन जाता था। उसके अस्तबल में बूढ़े घोड़ों, बूढ़े हाथियों और दूसरे बूढ़े जानवरों के लिए कोई जगह नहीं थी। अगर वह उन्हें कहीं देख लेता था, तो मार-मार कर भगा देता था।

बूढ़े आदमियों का हाल भी ऐसा ही था। अगर वह किसी बूढ़े आदमी को कहीं भी देख पाता, तो उसके सफेद बाल पकड़ कर वह जोर से हिलाता, और फिर उठा कर उसे जमीन पर पटक देता था। इस तरह वह उन्हें अनेक प्रकार से सताता रहता था।

ब्रह्मदत्त के इस तरह के अत्याचार असीम होने लग गए। वह किसी की परवाह नहीं करता था और किसी को भी उसके सामने चूँ करने की हिम्मत नहीं होती थी।

इस प्रकार के कष्टों से तङ्ग आकर प्रजा भयभीत हो गई, और नौजवान अपने बूढ़े माता-पिता को पास-पड़ोस के दूसरे राज्यों में विवश होकर भेजने लगे। यों वहाँ की प्रजा के पास अपने माता-पिताओं को अपने पास से हटा देने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह गया था।

माता-पिता का पालन न करके, उन्हें घर से बाहर दूसरी जगह भेज देना- कितना बड़ा पाप है। शास्त्रों में कहा गया है कि-"इस तरह के पापियों को रौरव

नरक में जाना पड़ता है। इसलिए उस राज्य के सभी लोग नरक में चले गए और स्वर्ग बिलकुल खाली हो गया।

स्वर्ग को खाली देख कर देवेन्द्र चिन्ता में पड़ गए। सोचने लगे कि इस राजा ब्रह्मदत्त को कोई ऐसा पाठ पढ़ाना चाहिए कि यह इन अत्याचारों को छोड़ कर सीधी राह पर आ जाय। सोचते-सोचते उन्हें एक उपाय सूझ गया।

भगवान बोधिसत्व ने एक बूढ़े का वेश धारण किया, और मिट्टी के दो घड़ों में मट्ठा भर कर एक बहुत ही पुरानी गाड़ी में उन्हें लाद कर काशी नगर में जा पहुँचे। जब वह काशी नगर में पहुँचे; ठीक उसी समय बड़ी शान से हाथी पर चढ़ कर ब्रह्मदत्त बाजार से गुजर रहा था। प्रजा ने ब्रह्मदत्त के डर से बाजारों और गलियों को खूब सजा रखा था।

बूढ़े की गाड़ी एकाएक राजा के सामने आ गई। उसे देखते ही राजा गुस्से से आग-बबूला हो गया और बिल्ला उठा-"ऐ बूढ़े, रास्ते से हट जा। तुझे मेरे सामने आने का साहस कैसे हुआ ?" कहते हुए वह दाँत पीसने लगा।



रास्ते पर खड़ी प्रजा को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि उनको वह बूढ़ा और गाड़ी कुछ नहीं दीख रहे थे। इसलिए लोग सोचने लगे कि राजा इस तरह गुस्से से क्यों चिल्ला रहा है।

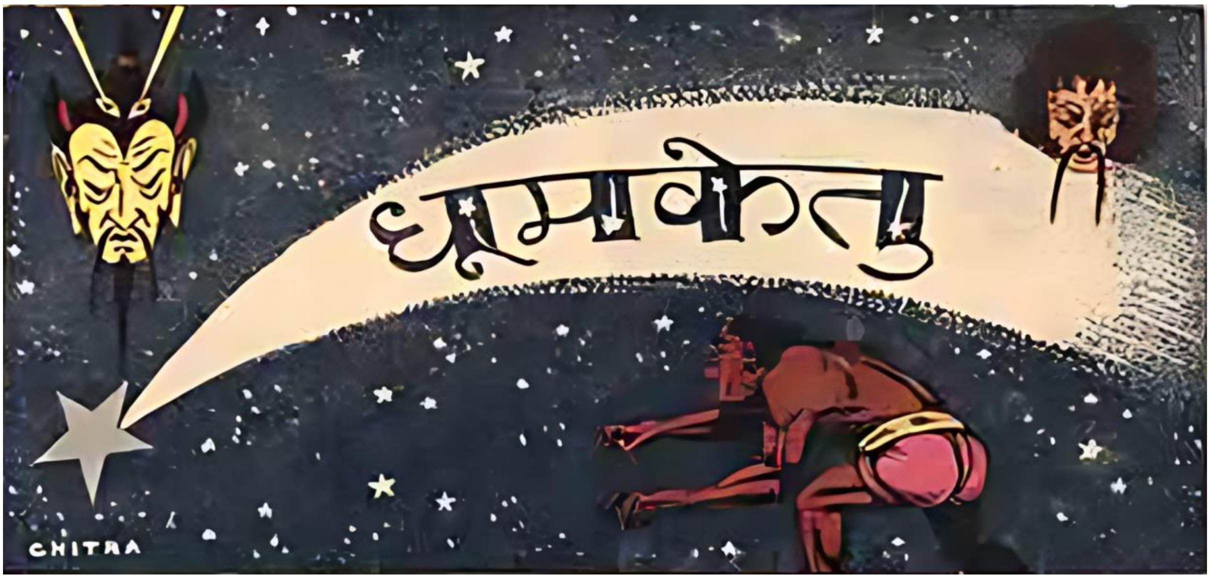
इस तरह राजा जब चिल्ला रहा था, तब बूढ़े के वेश में भगवान बोधिसत्व ने अपनी गाड़ी में से एक घड़ा उठा कर ब्रह्मदत्त के सिर पर दे मारा। राजा घबरा गया और डर के मारे हाथी पर से उतर पड़ा। उसका सिर चकराने लगा। तब देवेन्द्र ने दूसरा घड़ा भी



उसके सिर पर पटक दिया। उसके सिर पर से बहता हुआ मट्ठा उसके कपड़ों में आकर गिरा और उसके कीमती कपड़े खराब हो गए। इस पर राजा को बेहद गुस्सा आ गया। देवेन्द्र की गाड़ी अदृश्य हो गई। टूटे घड़ों के टुकड़े भी गायब हो गए। फिर देवेन्द्र अपने असली रूप में राजा के सामने प्रत्यक्ष हुए और वे उसे यों उपदेश देने लगे-"राजन, अब तुम्हारा क्या हाल है? घमण्ड से फूल कर तुमने निरीह जनो पर क्या क्या अत्याचार नहीं किए। मरने के बाद क्या तुम इस यौवन को अपने साथ ले जाओगे ? यह यौवन स्थायी नहीं है राजन्। तुम भी एक न एक दिन बूढ़े हो ही जाओगे। फिर बिना सोचे-विचारे तुम बूढ़ों की क्यों हँसी उड़ाते हो, और उन्हें सताते क्यों हो ? तुम्हारी प्रजा तुम्हारे इन अत्याचारों से कितनी तकलीफ उठा रही है; क्या तुमको यह मालूम है ? उनके माँ-बाप उनसे दूर-दूर के देशों में पड़े हुए हैं और इसी कारण से इस राज्य के लोग पापी बन गए हैं। पापियों से नरक भरा हुआ है, और स्वर्ग खाली पड़ा हुआ है। अब आगे कभी इस तरह का काम न करना, नहीं तो यह बज्र भी तुम्हारे सिर पर जा पड़ेगा।" ऐसा कह कर भगवान बोधिसत्व अदृश्य हो गए।

उसी दिन से ब्रह्मदत्त का सारा घमण्ड दूर हो गया। वह दिल से बूढ़ों का आदर-सत्कार करने लगा। उसने किसी को सताना तो बिलकुल ही छोड़ दिया।

इसके बाद उस राज्य की प्रजा में धीरे-धीरे राज-भय कम हुआ, और वे सब अपने-अपने माता-पिता को वापस लाने लगे। यह सब परिवर्तन उस राज्य में भगवान बोधिसत्व के कारण हुआ। इसके बाद वहाँ की प्रजा सुख और शान्ति से रहने लगी।



चाहे जो हो, कुण्डलनी राज्य की सेना को लेकर रवाना होने वाले जहाज तट छोड़ कर समुद्र की गोद में चल पड़े। उस समय समुद्र बहुत ही प्रशान्त था, और हवा भी बहुत अनुकूल थी।

सैनिक बहुत ही खुश थे। लेकिन सेनापति समरसेन अपने जहाज के एक कोने में बैठा हुआ दक्षिण दिशा में चमकने वाले एक पुछल्ले तारे की ओर देख रहा था। इसके पहले ही राज्य के ज्योतिषी ने चिल्ला कर कहा-"यह अशुभ लक्षण है। इस समय यात्रा नहीं करनी चाहिए।" यह बात किसी के कानों में नहीं पड़ी। लेकिन उस 'धूमकेतु' को देखते-देखते समरसेन अत्यन्त भयभीत हो उठा।

भय-विहल दृष्टि से जब वह यों देख रहा था; कि आकाश में न जाने कहाँ से आकर काले- काले मेघ घिर गए। क्षण में आलोक को निगल कर अन्धकार फूल उठा; समुद्र गरजने लगा, सैनिक डर के मारे काँपने लग गए।



लेकिन समरसेन बैठा-बैठा उसी तरह देखता रहा। इतने में नौकाधिपति ने आकर कहा- "सेनापति, हमारी सेना के बीच कोला-हल मचा हुआ है। हर आदमी विद्रोह करने को तैयार दीख पड़ता है।"

समरसेन अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। फिर उसने एक बार आकाश की ओर, और दूसरी बार समुद्र की ओर देखा।

"कुण्डलनी देवी की दया हो, तो शीघ्र ही सब कुछ अनुकूल हो जाएगा। समरसेन के नायकतत्व में रहने वाले हमारे सिपाहियों को कोई डर नहीं, जाकर उन से कह दो।"

नौकाधिपति ने जाकर समरसेन की बातें सबों से कह सुनाई। सबों ने सिर हिला कर यह जताया कि कुण्डलनी देवी की दया से अवश्य सब कुछ ठीक हो जाएगा।

लेकिन नया परिवर्तन कुछ नहीं हुआ। समुद्र में हलचल मची ही हुई थी। आकाश में काले-काले मेघ घिरे ही हुए थे। डरावनी पच्छिमी हवा भी चलने लग गई थी।

यह देख कर सिपाहियों का कलेजा काँपने लग गया। हर किसी की आँखें मुँदने लगीं। सब के पैर थर्रा उठे और कलेजे दहलने लगे। हवा की तेजी के कारण जहाज इधर-उधर भटक गए। ऐसे सङ्कट के समय जो जिससे मिलता था, वही अपने प्राणों की रक्षा की भीख माँगने लगता था।

जैसे-जैसे रात होती गई, हवा भी उसके साथ तीव्रतर होती गई। सिपाही भटके हुए जहाजों पर चढ़े हुए एक दूसरे से हाथा-पाई करने लगे। सभी जहाजों को आघात लगा; लेकिन समेरसेन जिस जहाज पर सवार था, उसे कहीं आघात नहीं लगा। जब तक सूरज न उगे, यह कैसे मालूम हो कि कितने जहाज डूबे और कितने लोग मरे ? इसका हिसाब कैसे लगाया

जाय ? सिर्फ एक समरसेन क्या कर सकता था ? वह अपने जहाज पर कुण्डलनी देवी की मूर्ति के सामने, घुटने टेक कर भक्ति-भाव से प्रार्थना करने लगा।

इतने में एक आश्चर्य की बात हो गई। हटात जो आँधी उठ खड़ी हुई थी, वह जैसे आई थी वैसे ही काफूर भी हो गई। देवी की मूर्ति के सामने तपोनिष्ठ होकर बैठे समरसेन को आतुर होकर उसके सैनिकों ने पुकारा-"सङ्कट टल गया, सूर्योदय हुआ; एक बार आकर दर्शन दीजिए।"

समरसेन के सिर से मानों पहाड़-सा बोझ उतर गया। एक बार गहरी साँस लेकर ऊपर आया। उसके जहाज पर रहने वाले आधे से अधिक सैनिक समुद्र में सो गए थे; और जो बचे थे, वे भी एक जगह पर नहीं थे। वे लोग दो-तीन मील की दूरी पर बीच समुद्र में तैर रहे थे।

"अब निश्चय हुआ कि मरने वाले तो मर गए डूबने वाले डूब गए। अब जो जीवित हैं, उन्हें तो एक जगह जमा कर लिया जाय।" ऐसा सोच कर तुरत समरसेन ने अपने जहाज का लङ्गर गिरा दिया। फिर अपने आदमियों को भेज कर दूर-दूर से



भटके हुए लोगों को जमा करवाने लगा।

खबर मिलते ही भटके हुए जहाज आ-आ कर सेनापति के जहाज के चारों ओर जमा होने लगे। सैनिकगण जहाज पर आ आ कर अपने सेनापति के सामने सिर झुका कर खड़े होने लगे ।

सब के सब ऐसे ही लोग थे, जो तूफान में पड़ कर अनेक यातना झेल चुके थे; और भाग्यवश बच कर लौट आए थे। अभी तक उनका हृदय धड़क रहा था कि जाने फिर अभी क्या-क्या भोगना बदा है।



समरसेन ने सभी परिस्थितियों को अच्छी तरह समझ-बूझ लिया। गत रात तूफान में जैसी ऊब डूब की हालत हो गई थी। इस से सब सैनिक समुद्र के नाम से ही काँपने लग गए थे। इसलिए अब समुद्र पर ही समय काटना असम्भव हो गया था। सब से बड़ी बात तो यह थी कि वे लोग अभी कहाँ हैं, इसका उन्हें पता नहीं था। तुरन्त समरसेन ने एक आदमी को हुक्म दिया कि वह मस्तूल पर चढ़ कर देखे, और पता लगाए कि कहीं कुछ दीखता है या नहीं।

सेनानी की आज्ञा से एक आदमी मस्तूल पर चढ़ गया। सब लोगों की दृष्टि उसी पर जम गई, जो अदमी ऊपर चढ़ा था। वह कुछ देर तक इधर-उधर देख कर बोला-"आस-पास कहीं भू-प्रदेश नहीं दीख पड़ता है। लेकिन पूरब की ओर बहुत दूर पर चिड़ियों के उड़ने-सा कुछ मेरी नजरों में दीख पड़ता है।

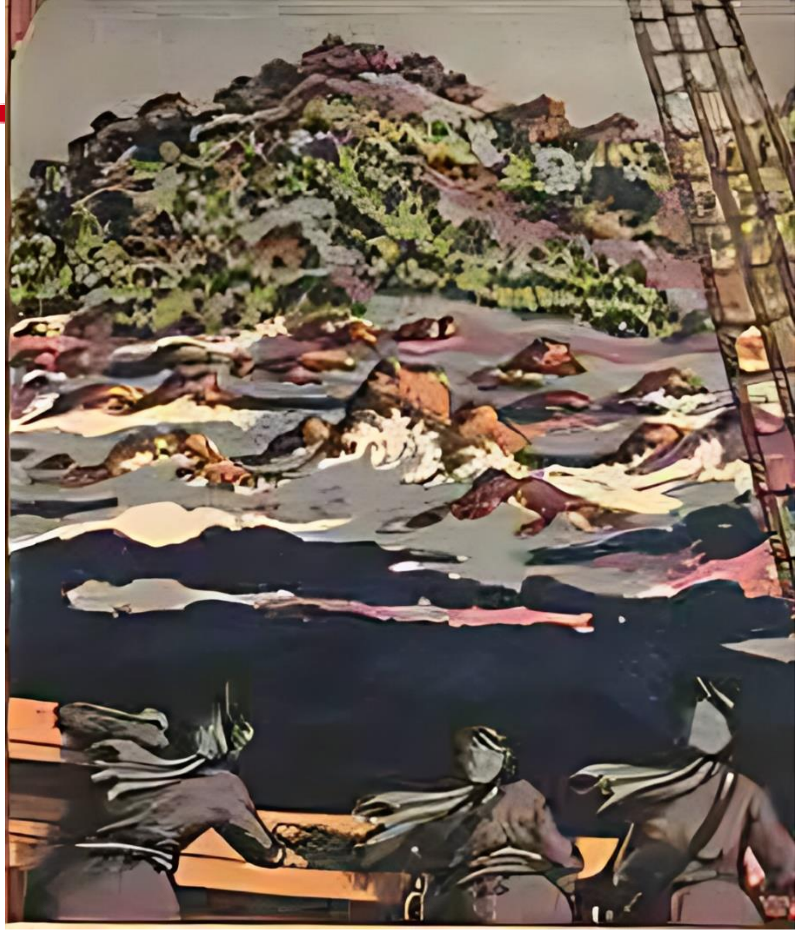
यह बात कानों में पड़ते ही समरसेन के उल्लास और उत्साह की सीमा न रही; और वह जोर से चिल्ला उठा-"कुण्डलनी देवी की जय!" यह सुन कर सैनिकों ने भी जोर से दुहरा दिया-"कुण्डलनी देवी की जय !"

चिड़ियों का उड़ना सुन कर समरसेन समझ गया कि अब हमारी जान बच गई। इस से उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

सेनानी के आज्ञानुसार सब जहाज उस ओर चल पड़े जिस ओर पक्षी उड़ रहे थे। मस्तूल पर चढ़ा हुआ सैनिक वहीं से जहाज को रास्ता बताने लगा। उस ओर बहुत दूर जाने पर भी जब भूमि का कहीं पता न लगा, तो सैनिकों में अत्यन्त निराशा फैल गई। सूर्य डूबने जा रहा था। सबों के दिल में यह डर समाया हुआ था-"अरे! कुछ देर में अन्धकार फैल जाएगा, तो इस अपार समुद्र के बीच हमें अकेले ही रहना पड़ेगा।"

उसी समय मस्तूल पर चढ़ा हुआ सैनिक गला फाड़ कर चिल्लाया- "देखो! वह देखो! भू-प्रदेश पास ही दीख रहा है।" यह सुन कर सब लोगों में नई जान आ गई और सब लोग उत्साह से भर गए।

अब वे लोग एक द्वीप में पहुँच गए थे। वह बड़ा ही भयङ्कर द्वीप था। समुद्र के गर्भ से निकल निकल कर पहाड़ अपने सिर निकाले खड़े थे। उन के ऊपर मनमाने बढ़े हुए बड़े-



बड़े पेड़ उग आए थे। उसके अलावा झुण्ड के झुण्ड जङ्गली जानवर इधर-उधर घूमते दीख पड़ते थे। ऐसे भयङ्कर और अजनबी प्रदेश में बिना जाने समझे उतरना मूर्खता है, खतरे में पड़ना है। यह सोच कर समरसेन ने किसी को भी जहाज से उतरने की आज्ञा नहीं दी।

लेकिन उसने अपने सैनिकों को दो भागों में बाँट लिया। उन में से कुछ लोगों को छोटी नावों में भर कर द्वीप की ओर भेजने का विचार किया, कि वे लोग जाकर पता लागाएँ; और फिर लौट कर हमें खबर दें तो बाकी लोग जा सकते हैं।



यही सेनापति का उद्देश्य था। लेकिन पहले जाकर पता लगाने की योग्यता उन सैनिकों में किस के पास थी ? उस जगह जाकर सब बातों का पता लगाने के लिए सिर्फ धैर्य और साहस ही बस नहीं था। समयोचित विवेक और युक्ति की भी आवश्यकता थी।

इन बातों पर अच्छी तरह विचार कर लेने के बाद समरसेन को यही उचित मालूम हुआ कि वह खुद जाकर पता लगा लाए। कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो; फिर भी अकेले जाना, खतरे से खाली नहीं था। इस लिए छह अनुभबी सैनिकों को साथ लेकर समरसेन उस द्वीप की ओर चल पड़ा और थोड़ी ही देर में वह किनारे पर पहुँच गया।

यह तट प्रान्त अत्यन्त निर्जन था। कहीं भी आदमी और आदमी जात का पता नहीं था। इस से समरसेन को शान्ति न मिली। वह हथियार से लैस था ही, उसे शक हुआ-"किसी पेड़ की आड़ से सहसा बाण आ जाय तो ?"

इस प्रकार सन्देह से भरा हुआ जब वह आगे बढ़ा जा रहा था, तो उसे एक भयङ्कर नाद सुनाई पड़ा। भय से काँपते हुए उसके साथियों ने कहा-"सेनानी, यह गरजन कोई मामूली नहीं है। ऐसा भयङ्कर और विचित्र गरजन हमने आज तक कभी नहीं सुना था।" यह बात सेनापति को ठीक जँची।

समरसेन आगे बढ़ता गया। शस्त्र धारी छहो सैनिक उसके साथ-साथ चल रहे थे। कुछ देर में वे पेड़ों के बीच पहुँचे। फिर अपने सामने खड़ी बड़ी झील की ओर देखा।

वहाँ जो दृश्य उन्हें दीख पड़ा, उस से वे स्तम्भित रह गए। कैसा था वह दृश्य ! जैसा सोचा था वैसा ही- भयोत्पादक और भीषण जङ्गली जानवरों के कलह-कोलाहल से जहाँ ऊधम मचा हुआ था।



उस कलह कोलाहल में न जाने कितने विचित्र जानवर आकर शामिल हो गए थे। आस-पास के पेड़ों की डालियों पर बैठे हुए बड़े-बड़े नर-वानर उस रण-रङ्ग को देख रहे थे, और कुछ-कुछ बोलते भी जा रहे थे। शिलाओं से तैयार हुए अस्त्र-शस्त्र उनके हाथों में चमक रहे थे।

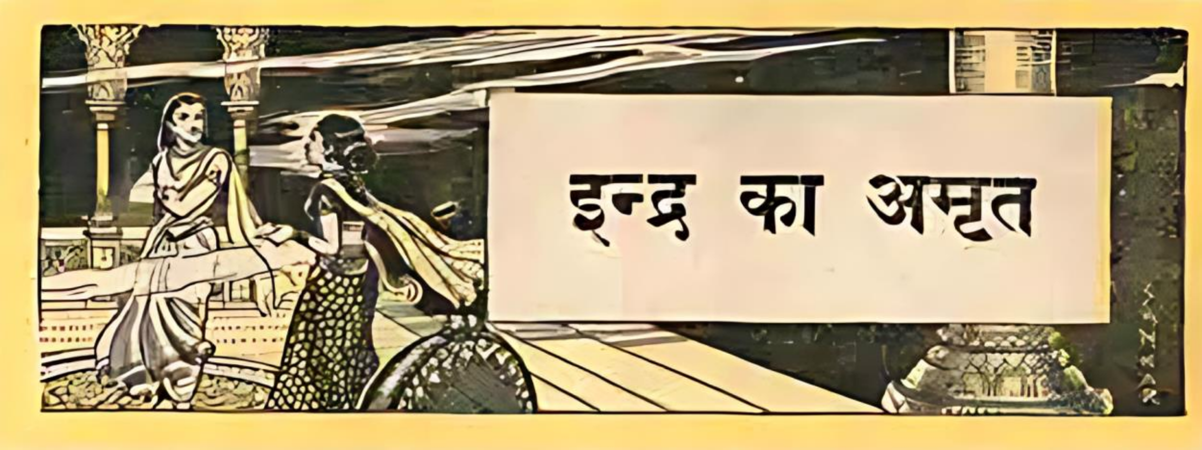
समरसेन ने अपने साथी सैनिकों से कहा-"सचमुच यह सब जङ्गली जानवर ही हैं। उन पेड़ों पर न आदमी बैठे हैं, न वानर। पाषाण युग में रहने वाले मानवों को ही हम लोग देख रहे हैं। और ये जानवर कितने ही लाखों बरस पहले के जान पड़ते हैं।" सैनिकों को कुछ भी सूझ नहीं पड़ा- क्या कहें वे। इतने भयङ्कर द्वीप से उठा ले जाने के लिए यदि धनराशि उन्हें कहीं मिल जाती, तो कितना अच्छा होता !

ठीक यही बात समरसेन के दिमाग में भी डोल रही थी। कुण्डलनी राज्य के धनागार को भरने और दूसरे राज्यों को नष्ट करने के उद्देश्य से ही तो वे निकले थे। अब क्या किया जाय ?

यह लोग इधर इस तरह सोच रहे थे, और उधर उन जङ्गली जानवरों का कलह- कोलाहल भयङ्कर से भयङ्कर होता जा रहा था। चारों ओर रहने वाले पेड़ों की आड़ से निकल-निकल कर चिंघाड़ते हुए हाथी इधर-उधर भागने लगे। उन में एक ऐरावत की तरह हाथी अलग हो गया, और जिधर यह लोग छिपे खड़े थे उसी ओर धमकता हुआ आने लगा। सैनिकों को सावधान करके समरसेन पेड़ के ऊपर चढ़ गया । इतने में उस हाथी का पीछा करते हुए दो सिंह, भीषण गरजन के साथ, उस पर झपट पड़े।

(अभी और है)





देवताओं के राजा थे देवेन्द्र। उनका रथ चलाने वाला था मातली। उसके यहाँ एक लड़की थी जिस का नाम था गुणकेशी। वह बहुत ही सुन्दरी थी।

जब लड़को बड़ी हुई, तो मातली को उसके व्याह की चिन्ता होने लगी। व्याह की बात आसान नहीं थी; क्योंकि वह देवेन्द्र का सारथि था। इसलिए उसे उसके अपने योग्य ही सम्बन्ध भी करना था। स्वर्ग और भू-लोक में मातली को कोई भी योग्य वर नहीं मिल सका। इसलिए वह सोचने लगा कि-"अब मैं क्या करूँ?"

उसकी पत्नी भी अपने पति को इस तरह चुप बैठे हुए देख कर चिन्ता में पड़ गई। आखिर में वह अपने पति से बोली-"स्वर्ग और भू-लोक में घर नहीं मिलता है, तो क्या हुआ। एक बार नाग लोक में जाकर देखिए तो सही।" उसने अपने पति को सलाह दी।

मातली को पत्नी की सलाह पसन्द आई, और वह नाग लोक की ओर रवाना हुआ। दोपहर का समय था। रास्ते में जाते-जाते उसे नारद मुनि मिल गए। मातली ने उन्हें देख कर अत्यन्त भक्ति भाव से नमस्कार किया; और अपने नाग लोक जाने की बात भी उन्हें बना दी। तब नारदमुनि कहने लगे-"इस समय में वरुण देव के यहाँ जा रहा हूँ क्योंकि बहुत दिनों से पृथ्वी पर वर्षा नहीं हुई है। अगर तुम भी मेरे साथ चले चली तो वहाँ तुम जरूर अपनी लड़की के लिए कोई एक योग्य वर खोज लोगे।"

मातली नारदमुनि के साथ चल पड़ा। दोनों वरुण के यहाँ पहुँचे। वरुण देव ने नारदमुनि से पृथ्वी की करूण कहानी सुनी



और उस दुर्दशा को शीघ्र ही दूर करने का वचन भी उन्होंने नारद को दे दिया। नारद और मातली वहाँ से चल दिए। क्योंकि वहाँ भी उन्हें कोई योग्य वर नहीं मिल सका। तब नारदमुनि ने मातली को नाग लोक पहुँचा दिया। विचित्र घटनाओं और त्रुटियों का वर्णन क के वे दोनों दानवों के निवासस्थान पाताल लोक में जा पहुँचे। नारद मुनि ने वहाँ के प्रमुख लोगों से मातली का परिचय कराया। मातली वहाँ के बड़े बड़े सोने चाँदी से बने महल, हीरे जवाहरों से जड़े द्वार, इत्यादि देख कर आश्चर्य में पड़ गया। तब नारद उससे बोले-"तुम यहाँ अपनी लड़की के योग्य वर ढूँढ सकोगे।" इस पर मातली ने शरमाते हुए कहा-"मैं तो इन महलों की सुन्दरता देखने में ही लीन हो गया था। लेकिन महामुनि, में एक दानव के साथ अपनी लड़की ब्याहने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूँ।" ऐसा कह कर वह उनकी ओर देखने लगा।

तब वहाँ से मातली को लेकर नारद वासुकि राजधानी भागवती में पहुँचे। वह नगर धन में, सुन्दरता में, इन्द्र की अमरावती के ही समान था। नारद ने वहाँ नागों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बारे में मातली को बताया-"यहाँ के लोग घनी और वीर हैं। वासुकि, कारकोटर, धनञ्जय और तक्षक ये नाम तो तुम्हें मालूम ही हैं। ये लोग महान कश्यप की सन्तान हैं। तुम्हारी लड़की के योग्य कोई-न-कोई वर यहाँ अवश्य ही मिल जाएगा।"

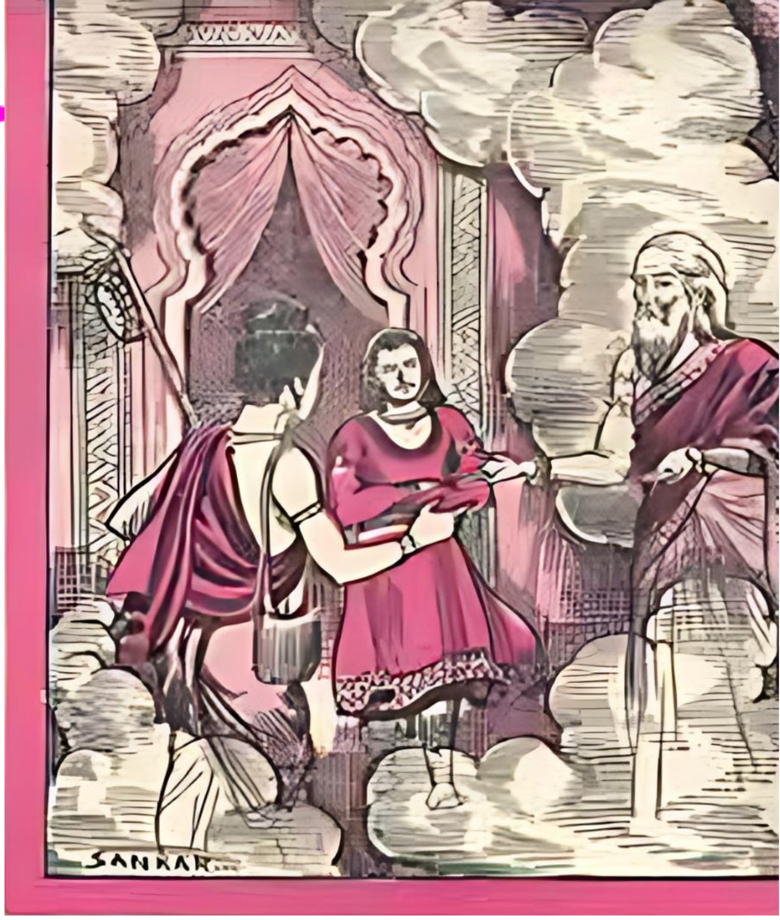
मातली ने उसी समय थोड़ी दूर पर खड़े कुछ युवकों में से एक की ओर सङ्केत करके कहा-"महामुनि! आपका कहना बहुत ठीक है। मैं उस युवक को अपनी लड़की के योग्य समझता हूँ। कौन है

वह ? आप जरा उसके कुल-गोत्र के बारे में कुछ बताने की कृपा कीजिए।

नारद ने उस युवक को गौर से देखने के बाद मातली से कहा-"तुम्हारी लड़की बड़ी भाग्यशालिनी है। क्योंकि वह युवक आर्यक और वामसुदि का पोता है; नाम है उसका सुमुख। इसके पिता का नाम चिकुर था। लेकिन बेचारे को गरुड़ ने मार डाला- कुछ दिन पहले।"

मातली ने निश्चय कर लिया, कि यह युवक ही मेरा दामाद बनेगा। उसने नारद मुनि से प्राथना की-"इसके साथ अगर आप यह शादी किसी न किसी तरह तय करा दें, तो मैं आप का आजन्म कृतज्ञ रहूँगा।"

तब नारद मातली को लेकर सुमुख के दादा आर्यक के पास पहुँचे उन्होंने आर्यक से मातली का परिचय कराया। इधर-उधर की बातें करने के बाद उन्होंने आर्यक से कहा-"यह मातली आप के यहाँ अपनी लड़की गुणकेशी को देना चाहते हैं।" ऐसा कह कर नान्द आर्यक के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।



नारद की बातें सुन कर आर्यक को खुशी भी हुई और साथ ही कुछ दुःख भी। खुशी इस बात के लिए कि इन्द्र के सारथि के यहाँ उसके सुमुख का रिश्ता होने जा रहा है। दुःख इस बात से कि गरुड़ उन लोगों का विरोधी है।

"इस रिश्ते से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। लेकिन सुमुख के पिता नाग चिकुर को मारने के बाद, अब एक महीने में इस सुमुख को भी मार डालने की प्रतिज्ञा उस गरुड़ ने की है, यही दुख की बात है।" उसने मातली से कहा।

यह बात सुन कर नारद और मातली बड़ी देर तक सलाह-मशवरा करते रहे। इसके बाद मातली और नारद सुनुख को अपने साथ लेकर इन्द्रदेव के पास गए। उस समय महाविष्णु भी किसी काम से वहाँ आए हुए थे।

नारद से महाविष्णु और इन्द्र ने सुमुख और गरुड़ के सम्बन्ध की बातें जान लीं। इसके बाद महाविष्णु ने मातली की प्रार्थना पर दया करके इन्द्रदेव से कहा-"इन्द्र, तुम सुमुख को थोड़ा-सा अमृत दे दो, सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

लेकिन इन्द्र अमृत देने के लिए तैयार नहीं दीख पड़े। क्योंकि इन्द्र शक्तिशाली गरूड़ की महिमा जानते थे।

इन्द्र को इस तरह से असमञ्जस में पड़े हुए देख कर महाविष्णु ने कहा-"तुम तो देवताओं के अधिपति हो; अगर तुम किसी को रक्षा करना चाहोगे, तो कौन उसमें बाधा डालने का साहस करेगा ?" ऐसा कह कर महाविष्णु इन्द्र के मुख की ओर देखने लग गए।

महविष्णु की बात मान कर इन्द्र ने सुमुख को चिरञ्जीवि रहने का आशीर्वाद दे दिया।

नारद मातली और सुमुख तीनों बहुत खुश हुए। फिर इन्द्र और विष्णु को प्रणाम करके उन लोगों ने खुशी-खुशी वहाँ से विदा ली।

कुछ दिनों के बाद गुणकेशी और सुमुख का विवाह बड़ी धूमधाम से हो गया। और वे लोग सानन्द रहने लगे। इस प्रकार नारदमुनि की कोशिश से इन्द्र के सारथि मातली और आर्यक के बीच सम्बन्ध की स्थापना हुई।





जंगली कौन ?

किसी जमाने में एक समय मिश्र देश में मेहर नाम का एक बड़ा सुल्तान राज करता था। उसके मन में अपनी स्थिति से सन्तोष नहीं था। वह अपने राज्य को और बढ़ाना चाहता था। इसलिए उसने निश्चय किया कि आस-पास के समस्त राजाओं को जीत कर उनसे कर वसूल कर के सम्राट कहलाएगा। यह निश्चय होते ही उसने राज्य का खजाना खोल दिया, और एक बड़ी सेना जमा करके विजय यात्रा शुरू कर दी। आक्रमणकारी मेहर सुल्तान की विजय वाहनी के मुकाबिले में कुछ राजा खड़े हुए। लेकिन समुद्र की तरह उमड़ती हुई आने वाली उस सुल्तान की सेना के सामने उन लोगों का पौरुष व्यर्थ हो गया। उन महावीरों ने युद्ध में अपने प्राण नौछावर कर दिए। कुछ राजाओं ने मोर्चा लेने में कोई लाभ न देख कर सुलह कर ली और कर देना स्वीकार कर लिया।

जैसे-जैसे राजा लोग उसके वशीभूत होते गए, मेहर की प्यास और भी बढ़ती गई। जो राज्य अधीन हो गए थे, उनसे घन जमा करके, और नई-नई सेनाएँ खड़ी करके, उसने नए-नए राज्यों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। इस प्रकार बलात्कार पूर्वक जो देश जीते गए उनमें 'शीकाँगू' भी एक था।

शीकाँगू पहाड़ों और जङ्गलों से भरा हुआ देश था। अहङ्कार के कारण मेहर ने उस देश पर भी चढ़ाई कर दी। लेकिन उसके पास जाना और लौटना असम्भव था। शीकाँगू राजा के अनुचर सब वैसे ही थे, जैसे हमारे देश के जङ्गली-भील होते हैं। उन लोगों ने किसी पेड़ पर या किसी टीले पर बैठ कर, अपने तीक्ष्ण और विषेले बाणों

चन्द्रशेखर भटनागर

से मेहर के बहुत से वीरों के प्राण हर लिए। वे रात के समय गाढ़ी नींद में आराम से सोए हुए, सुल्तान की छावनी में चींटियों की कतार जैसे झुण्ड के झुण्ड पहाड़ पर से उतर आते थे, और मेहर के सैनिकों को क़त्ल करके भाग जाते थे।

यह देख कर मेहर का प्रधान सेनापति सुलतान के पास आकर कहने लगा-"खुदाबन्द, हमारे लिए इसी में भलाई है, कि इस चढ़ाई को छोड़ कर हम अपने देश को लौट जाएँ; मरने से जो बच रहे हैं वे सैनिक सब देश जाने के लिए व्याकुल हो रहे हैं।" लेकिन मेहर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार न की।

"हुजूर, आप सम्राट हो गए हैं। विस्तृत साम्राज्य के एकछत्र स्वामी बन गए हैं। इतने से ही सन्तोष करके रुक जाने में हमारा लाभ है। जो देश हमारे अधीन हो गए हैं उनको अगर हम वश में रख सकें, तो वही हमारे लिए बहुत है।" सेनापति ने फिर कहा।

मेहर ने कहा-"इस शीकाँगू राजा को वश में करना ही होगा; इसे पछाड़ना ही होगा। इतने राजाओं



को हमने अधीन कर लिया है। क्या यह एक पहाड़ी राजा हमारे वश में नहीं हो सकेगा ?"

सुलतान के हुक्म को कौन टाल सकता था ? किसी की कुछ भी परवाह न कर, रुपए को पानी की तरह बहा कर, नई सेना खड़ी की गई। मेहर की समझ में यह न आया कि उस राजा को वश में लाने की जिद्द में आखिर उसे रोड़े-ढोकों के सिवा और क्या हाथ लगने वाला है ?

जिद्द ही प्रधान थी। इसलिए उसने अपने सिपाहियों के सामने घोषित किया-"जो कोई इस पहाड़ी राजा को जिन्दा या मुर्दा



उसके सामने लाकर खड़ा कर देगा उसको एक हजार मुहरें इनाम में दी जाएँगी।"

पहाड़ी राजा ने, पहले तो मेहर से सुलह करनी चाही; लेकिन उसे मालूम था कि वह इसे मञ्जूर नहीं करेगा। अगर सुलह का पैगाम लेकर जाएँगे तो पकड़ कर हमारी खाल खींच लेगा। इसलिए युद्ध में लड़ कर वीरगति प्राप्त करना ही अच्छा है। इस निश्चय के अनुसार अपने सब सङ्गी-साथियों को जमा करके दो पहाड़ियों के बीच मिश्र की सेना के साथ उसने घोर मुकाबिला किया। उस महायुद्ध में मेहर की ही जीत हुई। पहाड़ी राजा का एक आदमी भी नहीं बचा। "पहाड़ी राजा कहाँ है ?" मेहर ने अतुरता से पूछा।

"हुजूर, घायल होकर उसका शरीर हमारे सैनिकों की लाशों के बीच पड़ा हुआ है।" एक सैनिक ने कहा। उसको देखने की इच्छा से मेहर वहाँ जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर देखा, तो एक भयङ्कर आकार वाला काला कलूटा आदमी उन हजारों लाशों के बीच चारों ओर देखता हुआ खड़ा था। उसको देखकर मेहर बोला- "कौन हो तुम?"

"नरमाँस भक्षक के सिवा यह और कौन हो सकता है? मुर्दों को नोच कर खाने आया होगा।" सेनापति ने कहा।

सेनानी की बात सही थी। अफ्रीका देश के जङ्गलों में मनुष्य का माँस खाने वाले कितने ही लोग पाए जाते हैं।

मेहर ने उस नरमाँस भक्षक से कहा- "तुम्हें तो इतने माँस मिले हैं, फिर यों इधर उधर तुम क्या देख रहे हो ? उठा ले जाओ कोई एक लाश जो तुम्हें पसन्द हो।

"इन लोगों को किसी ने अपने खाने के लिए मारा है। मुझे तो सिर्फ एक ही लाश

चाहिए। लेकिन उसकी अनुमति लेकर ही तो मैं उसे खा सकता हूँ। इस लिए उस हत्यारे की राह देख रहा हूँ; जिसने इन्हें मारा है।" उस काले कलूटे ने कहा।

मेहर ने हँस कर कहा-"इन सब को मैने ही मारा है, लेकिन खाने के लिए नहीं।"

आश्चर्य से देख कर उस काले कलूटे ने दूसरा प्रश्न किया-"अगर खाना नहीं था, तो व्यर्थ में इतने आदमियों को क्यों मारा ?" मेहर ने अपने सेनापति से कहा-"यह बिलकुल जङ्गली जान पड़ता है। इसके दिमाग में कोई बात घुसाना हमारे लिए असम्भव है।" इतने में सुलतान के पीछे से किसी के हँसने की आहट आई। सुल्तान ने फौरन पीछे की ओर मुड़ कर देखा, तो देखता क्या है-जङ्गल में तपस्या करने वाला एक फकीर उसके सामने खड़ा है।

"महात्मा, य आप हँसे क्यों?" मेहर ने पूछा। "सुलतान, तुमने जङ्गली मान कर, इस नरमाँस भक्षक को तिरस्कृत किया। लेकिन यह तो खाने के लिए ही आदमी को मारता है, व्यर्थ में किसी की जान नहीं लेता। और तुम तो साम्राज्य बढ़ाने की आकांक्षा से रण-बाद्य बजा कर लाखों आदमियों के प्राण बिना प्रयोजन ही निकाल लेते हो। सच है न? अब जरा सोच कर बताओ तो सही कि दोनों में जङ्गली कौन है ? तुम या वह नरमाँस भक्षक?" फकीर का प्रश्न सुलतान पर बज्र-सा गिरा। उसकी बातें का अर्थ समझ कर मेहर लज्जा से नत हो गया।

इतना ही नहीं, उसी क्षण से उसका मन पूरी तरह बदल गया और उसने निश्चय किया, कि आज से में युद्ध का कभी नाम भी नहीं लूँगा।





करीब बारह सौ बरस पहले मलयाल देश में, रामानुज नाम का एक तेली का लड़का था। वह बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि था।

कुशाग्र बुद्धि अर्थात बहुत तीक्षण-बुद्धि बाला। इसलिए जो कुछ वह एक बार सुनता, वह चाहे श्लोक हो, गीत हो, उसे कण्ठस्थ हो जाता था। एक बार सुन कर जो याद कर लेता है उसे एकसंस्थाग्राही कहते हैं।

उसे अपने देश के बड़े-बड़े ग्रन्थों की बातें जानने का कुतूहल पैदा हुआ। हमारे देश में चार वेद हैं, छह शास्त्र हैं, अठारह पुराण हैं। रामानुज के मन में इन सब ग्रन्थों को पढ़ कर समझने की इच्छा हुई। लेकिन रामानुज को कोई वेद पढ़ाने के लिए तैयार नहीं हुआ। उस काल में बेद और शास्त्र सिर्फ ब्राह्मण ही पढ़ा करते थे। दूसरों के लिए उसमें क्या है, यह जानने का मौका नहीं था।

रामानुज के पास बुद्धि थी, आसक्ति भी थी, फिर भी वह जाकर किसी ब्राह्मण से धीरता पूर्वक यह नहीं पूछ सका कि मुझे वेद पढ़ाइए।

मौका न मिलने पर भी, रामानुज में वेद और शास्त्र पर जो प्रेम था, वह कम नहीं हुआ। एक ब्राह्मण पण्डित अपने शिष्यों को पाठ पढ़ाया करता था; उनके पास जाकर यह सुनने लगा। चूँकि वह एकसंस्थाग्राही था, इसलिए एक बार सुनते ही उसे बात याद हो जाती थी। इस प्रकार रामानुज ने आसानी से पाण्डित्य प्राप्त कर लिया।

रामानुज अपने कोल्हू में तेल पेर कर बेचा करता था। एक दिन प्रातःकाल तिल

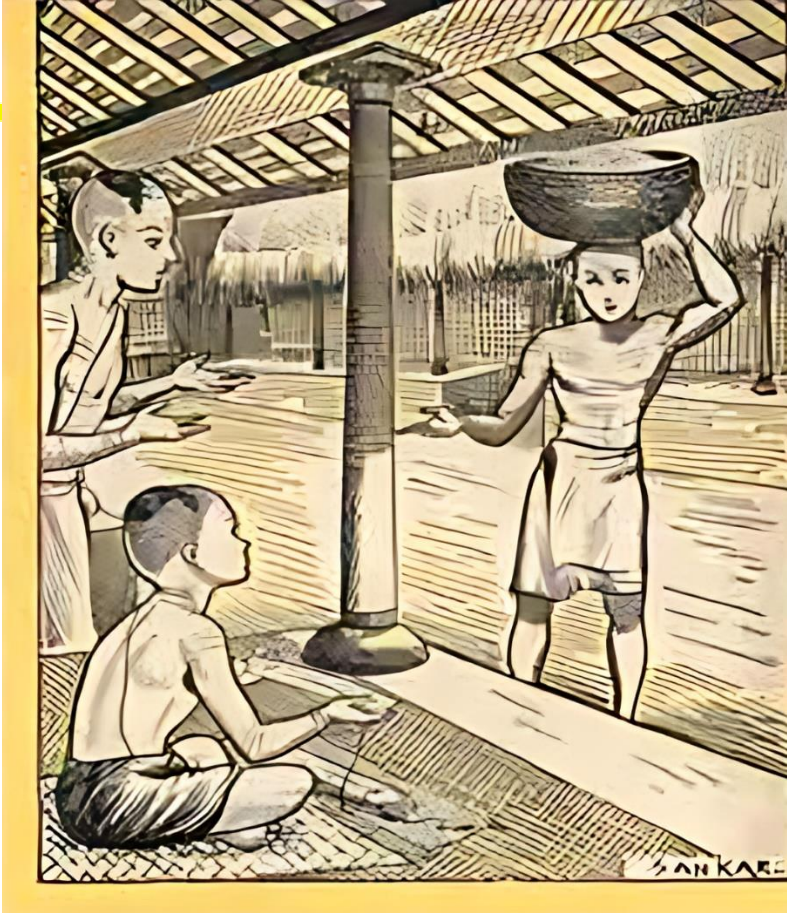
गोबिन्दन नायर

को धोकर साफ करने के लिए वह पास की नदी में जा रहा था, कि रास्ते में एक ब्राह्मण बच्चा अपने ओसारे पर बैठ कर ऋक- वेद की एक ऋचा याद कर रहा था। लेकिन उसे वह गलत पढ़ रहा था। रामानुज यह न सुन सका और उसकी गलती सुधार दी।

उस लड़के का बाप यह सब सुन कर अन्दर से बाहर आया और रामानुज को देख कर आश्चर्य में पड़ गया। "अरे! मेरे लड़के के पाठ में गलती पकड़ने वाला तू ही है न?" रामानुज ने यह देखा कि उसका भेद खुल गया, तो उसने दाँतों तले उँगली दबा ली और बोला-"जी हाँ, मालिक!" "वेद पढ़ने का हक तो तुम्हें नहीं है, किसने तुम्हें पढ़ाया ?" ब्राह्मण ने पूछा।

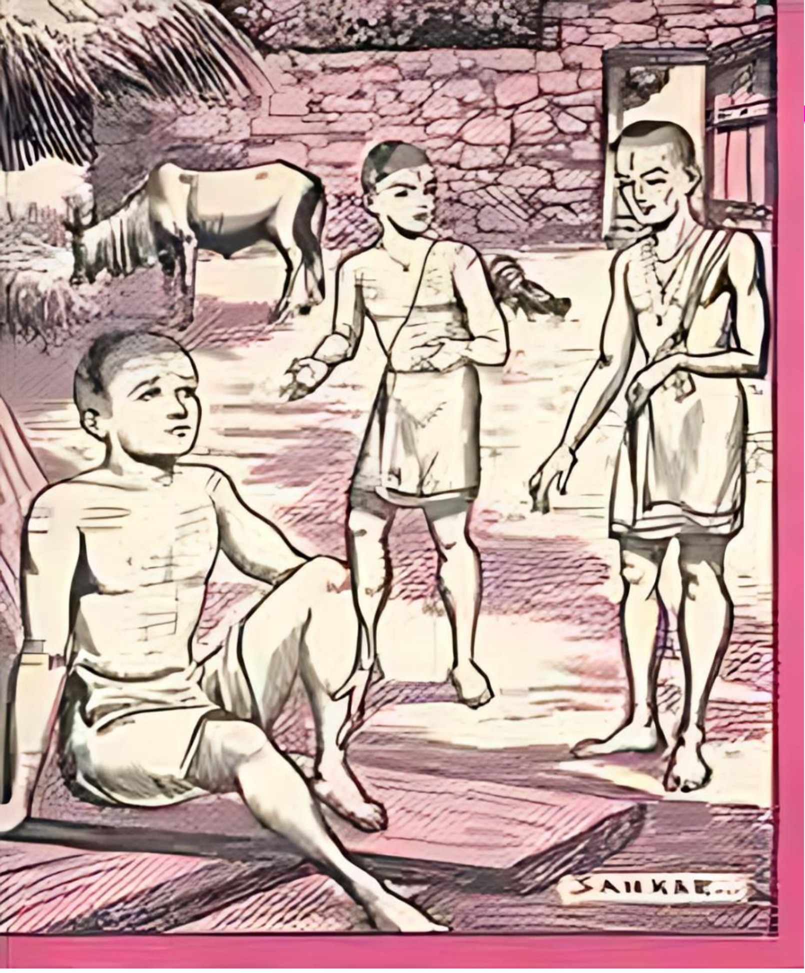
"मुझे किसी ने नहीं पढ़ाया। सुन कर मैंने सीख लिया है।" रामानुज ने जवाब दिया। ब्राह्मण को इस पर विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर पूछा- "अच्छा, तुमने जो सीखा है, सुनाओ का सही।"

सस्वर और शुद्ध उच्चारण के साथ, बिना किसी प्रकार की गलती के उसने चारों वेदों को आदि से अन्त तक पढ़ सुनाया।



गाँव के सभी ब्राह्मण जमा हो गए, और लड़के के मुँह से वेद पाठ सुन कर दङ्ग रह गए और साधुवाद देने लगे। लेकिन वह साधुवाद धीरे-धीरे असूया में बदलने लगा। असूया बहुत बुरी चीज होती है। जाने कितने पाप करवाती है। उस गाँव के पण्डित सब जमा होकर उस के प्रति षड्यन्त्र रचने लगे।

बुद्धि को मन्द करने वाली एक औषध खीर में मिला कर उन लोगों ने लड़के को खाने दे दिया-"यह भागवत प्रसाद है, शूद्र को नहीं देना चाहिए। लेकिन तुम पण्डित हो, इसलिए हम तुम्हें देते हैं; किसी से कहना नहीं।"



रामानुज अपने भाग्य पर फूला न समाया और फौरन वह खीर खा गया। उसी ग्राम में नारायण भट्टाद्री नाम का एक विद्यार्थी रहता था। उसको रामानुज के प्रति बहुत आदर का भाव था। इसलिए वह अक्सर उसके पास आया-जाया करता था।

प्रसाद समझ कर बिष खाने वाले रामानुज के पास वह नारायण दूसरे दिन सबेरे आ पहुँचा। उसने कितना भी प्रयत्न किया, लेकिन रामानुज के मुँह से कोई बात न आई। इसके अलावा वह पागल की तरह देखने लगा।

नारायण ने सोचा कि इन ब्राह्मणों ने रामानुज को अवश्य कुछ-न-कुछ खिला- पिला दिया होगा। वह जाकर तुरन्त एक वैद्य को ले आया।

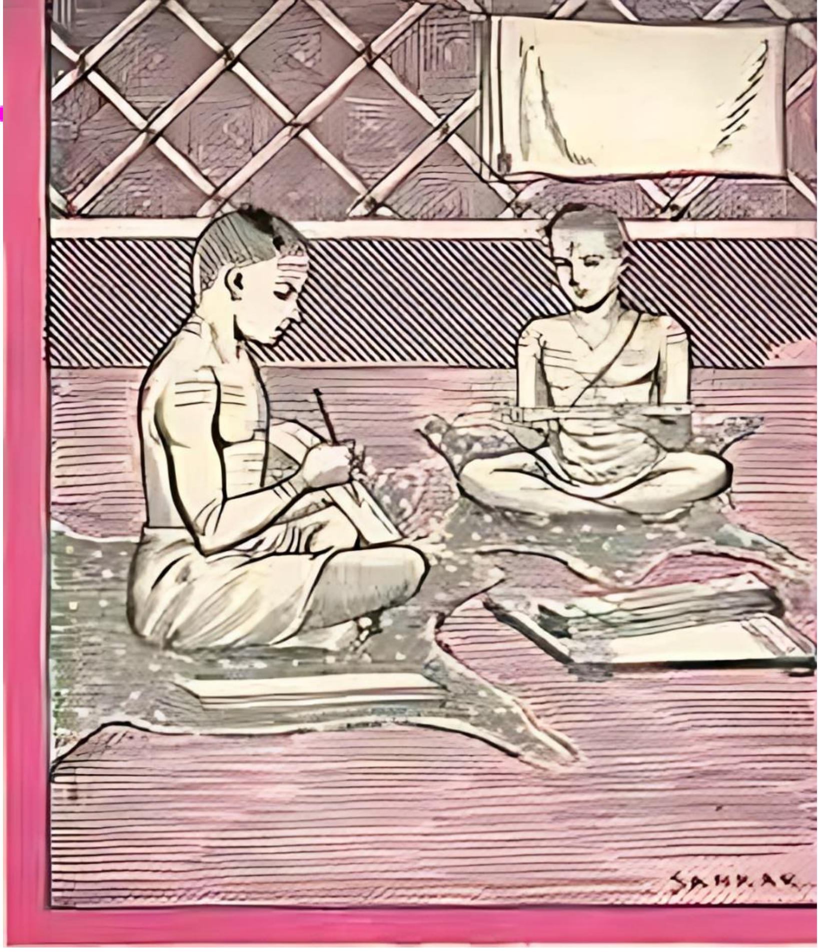
वैद्य ने विष मारने वाली एक औषध मक्खन के साथ मिला कर रामानुज को खिला दी। दवा खाते ही बँधी हुई जीभ खुल गई और नष्ट हुई बुद्धि धीरे धीरे लौट आई। फिर श्लोक और पद एक-एक करके सब याद आने लगे।

अब भट्टाद्री और रामानुज में प्रेम बढ़ गया। नारायण भी पण्डित और कवि था। लेकिन रामानुज की तरह महान प्रतिभावान नहीं था। फिर भी रामानुज की सहायता से उसने अपने अनेक सन्देह दूर कर लिए और अपने पाण्डित्य को बढ़ा लिया। उस समय में पण्डित लोग गूढ़ भाषा में बात करते थे। खूब सोचे विचारे बगैर उन की बातों का अर्थ समझ में नहीं आता था। एक दिन नारायण ने रामानुज से पूछा-"तुम्हारे कोल्हू में जो तेल तैयार होता है वह सर्वश्रेष्ठ है न ?" रामानुज ने इसका जवाब दिया-"हमारे पास जो तेल है वह दस तिलहनों का सार है।"

"रामानुज का भाव क्या है?" कितनी भी कोशिश करने पर नारायण की समझ में नहीं आया। आखिरकार वह अपने इष्टदेव विष्णु भगवान का ध्यान करता हुआ सो गया।

स्वप्न में भगवान विष्णु उसे दीख पड़े। उसने उन से पूछा-"भगवान ! रामानुज ने दस तिलहनों का जो नाम लिया है, उसका मतलब क्या है ?" उस प्रश्न का उत्तर विष्णु भगवान ने यों दिया-"रामानुज के पास चार वेद और छह शास्त्र हैं। इसे ही तुम दस तिलहन समझो। इनका सार रूप ज्ञान है, वही उसके पास से जनता को प्राप्त होने वाला तेल है। उस तेल को शीघ्र पेर करके जनता को भेंट करने कहो।" ऐसा कह कर भगवान अन्तर्धान हो गए।

नींद से जागते ही नारयण उठा और रामानुज के घर गया। फिर उसे स्वप्न की सारी बातें कह सुनाई। रामानुज खुशी से उमड़ पड़ा और नारायण का आलिङ्गन करके बोला- "तुम्हारे कारण मेरा जन्म धन्य हो गया। भगवान के आदेशानुसर वेद- शास्त्रों का सार में जनता को अवश्य भेंट करूँगा।"



वेद शास्त्रों के सार का मतलब है पुराण। महर्षि वेदव्यास ने पुराणों की रचना की थी। लेकिन उससे सिर्फ संस्कृत के पण्डितों को ही लाभ मिलता था; सामान्य जनता को नहीं। इसलिए रामानुज ने जन साधारण की समझ में आने लायक मलयालम भाषा में महा- भारत, भागवत और रामायण की रचना की।

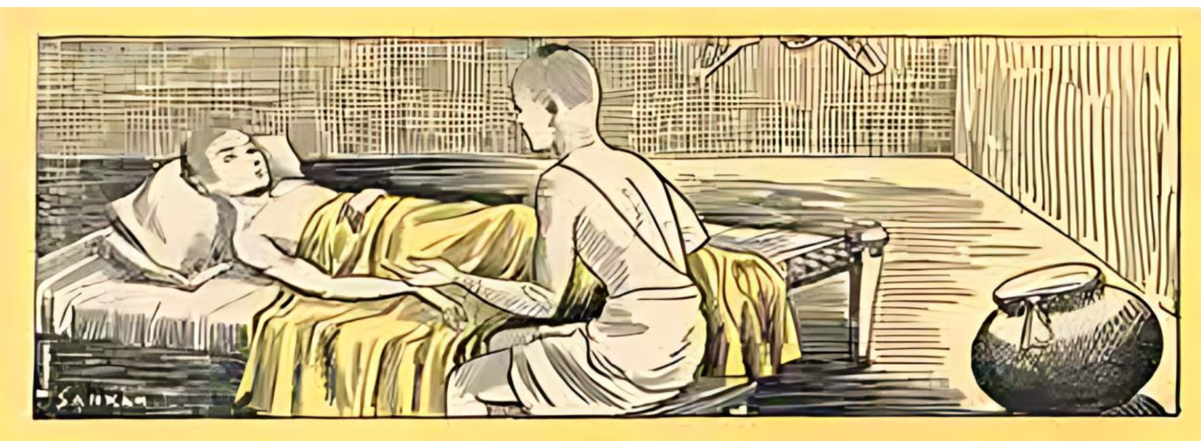
जब यह रचना हो रही थी, तब नारायण भट्टाद्री ने खाट की शरण ले ली। रामानुज उसे देखने गया और पूछा-"क्या दवा खा रहे हो ?" जवाब मिला-"सभी चिकित्साएँ चल रही हैं; मगर किसी से फायदा नहीं हो रहा है। "ऐसा

है तो अब मत्स्य चिकित्सा आरम्भ करो।" ऐसा कह कर रामानुज चला गया। नारायण को उस की बातें सुन कर बहुत क्रोध आया। उसने सोचा- "यह भला आदमी मुझे मछली खाने की सलाह देता है।" गुस्से के कारण नारायण भट्टाद्री ने बार-बार देखने आने जाने वाले रामानुज से पहले की तरह बातचीत बन्द कर दी। इसे भाँप कर रामानुज ने नम्रता के साथ पूछा-"भाई, क्या मैंने तुम्हें कोई कठोर बात कह दी है ?" नारायण अपने को रोक न सका और मत्स्य चिकित्सा की बात बता दी।

यह सुनते ही हँसते-हँसते रामानुज के पेट में बल पड़ गए। वह कहने लगा-"भाई, यही तुम्हारे गुस्से का कारण है ? मत्स्य चिकित्सा आरम्भ करो, इस का मतलब खाना नहीं था। मनुष्य जो कुछ चिकित्सा कर सकता है, उस से तुम्हारी बीमारी दूर नहीं हुई; यह सोच कर मैंने यह कहा, कि अब तुम्हारे लिए एक ही चिकित्सा बाकी रह गई, और वह भगवान की प्रार्थना है। यही मुझे सूझ पड़ा। भगवान ने दस अवतार लिए थे, उन में पहला अवतार था मत्स्य अवतार। उस से आरम्भ करके दस अवतारों की प्रार्थना करने की सलाह मैने दी थी।"

नारायण को अपनी मूर्खता पर लज्जा हुई। उसी दिन से वह दस अवतारों के स्तोत्रों की रचना संस्कृत श्लोकों की तरह करने लगा। वही आज भी मलयालम देश में 'नारायणीय' नाम से पाठ किया जाता है।

रामानुज ने मलयालम भाषा में जो पुराण लिखे वे अमर हो गए। आज भी उस प्रदेश के बहुत से लोग रामानुज की जन्म भूमि वाले गाँव से बालू उठा लाते हैं और उसके ऊपर 'ओनामासी' लिख कर अपने बच्चों का अक्षराभ्यास कराते हैं।





बहुत पहले रङ्गपुर गाँव में हनुमान नाम का एक आदमी रहता था। वह एक अनाथ लड़के को पाल रहा था। उस लड़के का नाम था शङ्कर। वह कुछ बावला सा था। इसलिए हनुमान उसे अपने घर के काम काज में लगाए रखता था।

एक दिन हनुमान की स्त्री ने शङ्कर को एक सौ आम खरीद लाने बाजार भेजा। आम खरीद कर और दुकान्दार से उनकी रसीद लेकर जब वह घर वापस आ रहा था तो थोड़ी दूर जाने के बाद एक आम खा लेने की उसकी इच्छा हुई। एक आम लेकर सोचने लगा-"इतने आमों में से एक अगर में खा लूँ तो मालकिन को क्या पता चलेगा ?" उसने एक आम खा लिया और बाकी आम लेकर घर आ गया।

शङ्कर ने जब आम लाकर मालकिन को दिए, और उसने गिने, तो एक आम कम निकला। यह देख कर मालकिन ने शङ्कर से पूछा-"क्या इनमें से तुमने एक आम खा लिया है ?" शङ्कर ने जवाब दिया-"हाँ, मैंने एक आम खा लिया है। लेकिन आप को यह कैसे मालूम हुआ?" इस पर मालकिन गरज कर बोली-"यह रसीद बताती है।" यह कह कर उसने शङ्कर को खूब पीटा।

कुछ दिनों के बाद मालकिन ने फिर एक दिन शहर को आम लाने भेजा। आम लेकर घर आते समय शङ्कर ने सोचा-"पिछली बार रसीद के कारण ही मालकिन ने एक आम की चोरी पकड़ ली थी। अब की में यह रसीद ही कहीं फेंक देता हूँ।" यह सोच कर उसने रसीद फेंक दी और दो आम खा कर बाकी आम लाकर मालकिन को दे दिए। मालकिन ने जब आमों को गिना तो अब की उनमें दो आम कम थे। उसने

शङ्करलाल गुप्ता

शङ्कर को बुला कर पूछा-"क्या अब की बार भी तुमने आम खाए हैं ? इस बार दो

आम कम हैं।" तब शङ्कर ने डरते हुए कहा-"मालकिन ! रास्ते में मुझे बड़ी भूख लगी, तो मैंने दो आम खा लिए। लेकिन आपको यह कैसे मालूम हुआ, इस बार तो मैने रसीद भी फेंक दी थी।" इस पर मालकिन ने कहा-"मुझे सब कुछ मालूम है। आगे से कभी तुम्हें बाजार नहीं भेजूंगी।" एक दिन मालकिन ने शङ्कर को बुला कर कहा-"देखो, शङ्कर, हमारे घर के आस-पास कोई एक बिल्ली है। वह इमारी मुर्गी और उसके बच्चों को शायद तकलीफ दे, इसलिए तुम होशियार रहना।" उस दिन से शङ्कर मुर्गी और उसके बच्चों की देख-भाल करने लगा।

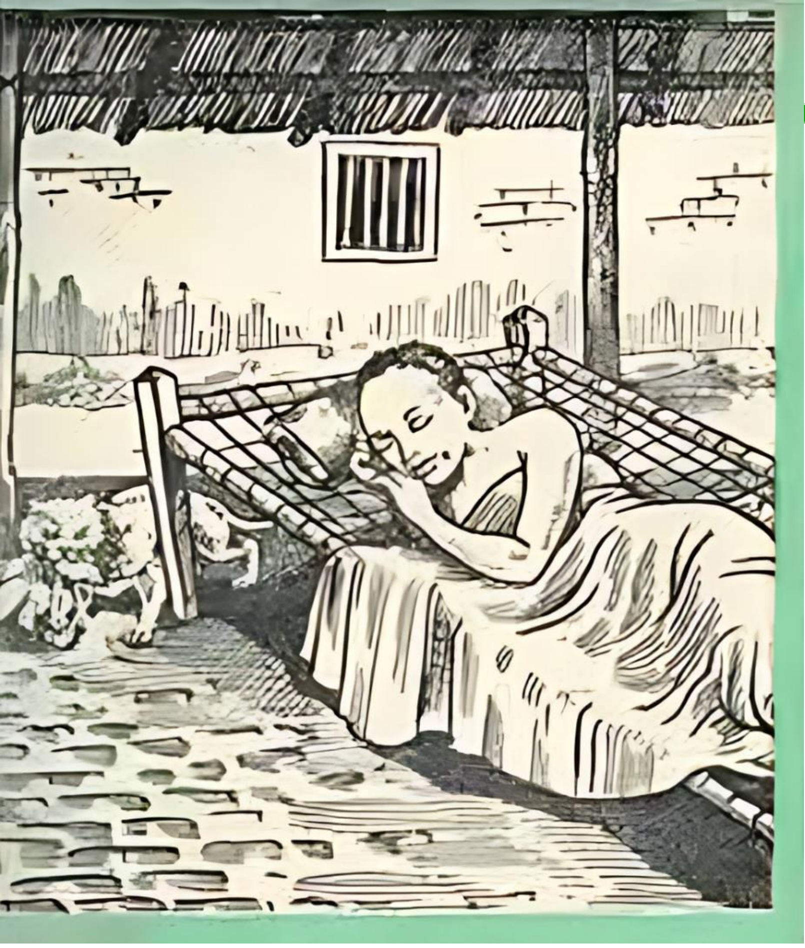
लेकिन एक रात को जब उसे नींद आने लगी, तो उसने मुर्गी और उसके बचों के पैर डोरी के एक सिरे में बाँध कर दूसरा सिरा अपनी चारपाई से बाँध लिया; और सो गया। बिल्ली आई और मुर्गी के सब बच्चों को खा गई।

सबेरा हुआ। मालकिन उठी और देखा तो मुर्गी के बच्चों में एक भी



नहीं बचा था। तुरन्त उसने शङ्कर को बुला कर पूछा-"मुर्गी के सभी बच्चे क्या हुए ?" तब शङ्कर बोला-"कल रात को सोने के पहले मैंने उन सब के पैर एक डोरी से बाँध कर इस चारपाई के नीचे छोड़ दिया था।" मालकिन को गुस्सा आ गया और वह बोली-"डोरी से बाँध देने से बिल्ली थोड़े चुप रहेगी ?" मालकिन ने इस दफा भी शङ्कर को खूब पीटा।

कुछ दिन और बीत गए। मालकिन गर्भवती हुई, तो उसके मायके वालों ने एक टोकरी में बेसन के लड्डू भेजे। मालकिन ने वह टोकरी इस ख्याल से छींके



के ऊपर रख दी, कि शङ्कर उसे न छू सके। शङ्कर के पूछने पर मालकिन ने कहा-"उस टोकरी में विष है, अगर तुमने उसमें से लेकर कुछ खाया तो तुरन्त मर जाओगे।"

इस तरह रोज-रोज मार और गाली खाते-खाते शङ्कर भी अपनी जिन्दगी से तङ्ग आ गया था। एक दिन उसने सोचा-"ऐसी जिन्दगी से मर जाना ही अच्छा है! संयोग से उस टोकरी में विष भी रखा है। क्यों न उसमें से थोड़ा सा खा लूँ? बस, फिर बेड़ा पार हो जाएगा।" तुरन्त छींके पर से उसने टोकरी उतारी और बैठ कर मजे से लड्डू उड़ाने लगा।

इतने में किसी काम से हनुमान वहाँ आ गया। शङ्कर उसे देखते ही घबरा गया। हनुमान ने पूछा-"क्या बात है ? क्या कर रहे हो ?" लेकिन शङ्कर कुछ भी नहीं बोल सका क्योंकि उसका मुँह तो लड्डूओं से भरा हुआ था। इशारे से पीने के लिए पानी माँगा। हनुमान उसके लिए पानी लाया। पानी पीकर शङ्कर यों कहने लगा:-

"कुछ नहीं, मैं इस जिन्दगी से ऊब गया था। रोज मार खा खा कर तङ्ग आ गया था। इसलिए मैंने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया है। एक बार मालकिन ने मुझ से कहा था कि इस टोकरी में विष है। इसलिए मैंने टोकरी का सब विष खा लिया है।"

हनुमान कुछ नहीं समझ सका। उसने अपनी स्त्री को बुला कर पूछा-"क्या बात है? तुमने इस से कहा था कि इस टोकरी में विष है ?" मालकिन ने टोकरी देखी तो वह खाली पड़ी थी। वह जल-भुन कर गुस्से से चिल्लाई - "तुम्हारा पेट फट जाय ! मैं तुमसे जो कुछ कहती हूँ उसका

उल्टा ही करते ह।" फिर अपने पति को लड्डूओं की बात बता दी जिसे सुन कर हनुमान हँसी न रोक सका।

इस तरह दिन बीतते गए। अब हनुमान के लड़के की शादी होने जा रही थी। हनुमान अपने रिश्तेदारों के साथ बैलगाड़ी में बैठ कर लड़की वालों के यहाँ भोजन करने उनके गाँव जा रहा था। रात का समय था। शङ्कर भी उन के साथ था। उसने शङ्कर को बुला कर कहा-"शङ्कर, तुम गाड़ियों के पीछे-पीछे चलते रहना; और यह भी देख लेना कि कोई चीज गाड़ी से न गिरने पाए।" शङ्कर ने कहा-"बहुत अच्छा।"

गाड़ियों में लोग खूब गाढ़ी नींद सोए हुए थे। अकेला शङ्कर उन गाड़ियों के पीछे-पीछे चल रहा था। इतने में एक गाड़ी के बैल ने थर से गोवर किया। शङ्कर ने उसे कोई कीमती चीज समझ कर उठा लिया और सोने वाले के सिरहाने रख दिया। गाड़ियाँ चलती रहीं। इसके बाद फिर एक गाड़ी के बैल ने गोवर किया, तो शहर ने उसे भी उठा कर उसी गाड़ी में सोने वाले के सिर के



नजदीक रख दिया। इस प्रकार बारी-बारी सभी गाड़ियों में उसने गोबर रख दिया ।

सबेरा हुआ । सब लोग उठे और एक दूसरे को देखने लगे। क्योंकि हरेक के सिर और माथे पर गोबर लगा हुआ था। पूछने पर उसने अपने मालिक से कहा-

"आपने ही कहा था कि जो चीज जिस गाड़ी से गिरे, उसे उसी में रख देना। मैंने जो चीज जिस माड़ी से गिरी उसे उसी में रख दिया।"

यह सुन कर हनुमान को बहुत गुस्सा आया और उसने कहा-"अरे, बेवकूफ ! तुझे साथ में ले आए, यही



भारी गलती हमने की। आखिर वे लोग किसी न किसी तरह गाँव पहुँच गए। शादी में आए हुए सभी लोग शङ्कर को बन्दर की तरह नचा रहे थे। विवाह के आखरी दिन सबों के साथ शङ्कर को भी नए कपड़े मिले। कपड़ों को पहन कर वह एक बड़े आईने के सामने खड़ा हुआ, और अपनी सूरत देखने लगा। उसको अपनी सूरत कुछ बदली हुई दीख पड़ी। यह देख कर वह ओर से चिल्ला उठा-"शङ्कर कहीं खो गया है।" यह चिल्लाना सुन कर सभी लोग वहाँ आ गए, और असली बात जान कर वहाँ से उसे दूर ले गए। उसके नए कपड़े उतरवा कर उसे फिर से पुराने कपड़े पहना दिए और उसी आईने के सामने ला खड़ा किया। शङ्कर अपना पुराना रूप देख कर बहुत खुश हुआ।

विवाह के बाद सभी लोग अपने-अपने घर चले गए। एक दफा शङ्कर को हनुमान ने अपने समधी के घर कुशल समाचार लाने भेजा। जाते समय शङ्कर से मालकिन ने कहा-"अरे, वहाँ कहीं अन्ट शन्ट बातें न करना, दो तीन शब्दों में ही बात करना, समझे?"

शङ्कर हनुमान के समधी के घर पहुँचा। उन लोगों ने उसका आदर सत्कार करके पूछा-"वहाँ हमारे सभी लोग सकुशल हैं न?" शङ्कर ने एक ही शब्द में कहा-"हाँ"। फिर वर्षा और फसल के बारे में उन लोगों ने पूछा, तो शङ्कर ने दूसरा शब्द कहा-"वर्षा" इस पर उन लोगों ने कहा-"खेती-बारी तो खूब होती है न?" उसने कहा-"हाँ"।

उन लोगों ने दूसरा प्रश्न किया-"हमारे दामाद तो सकुशल है न?" तब शङ्कर को मालकिन की बात याद आ गई। क्योंकि तीन शब्द तो खतम हो गए थे। इसलिए

इस प्रश्न का उत्तर ने देकर वह चुप बैठा रहा। इस पर वहाँ के लोग चिन्तित होकर पूछने लगे-"शङ्कर, हमारे दामाद तो अच्छे है न?" इसका भी शङ्कर ने कोई जवाब नहीं दिया। इस तरह शङ्कर को पत्थर की मूर्ति की तरह चुप बैठे देख कर समधी ने पूछा-"क्यों जी, चुप क्यों हो? क्या हमारे दामाद बीमार हैं?"

लेकिन शङ्कर को यह डर लगा हुआ था कि कहीं तीन शब्दों से ज्यादा बोला तो गलती हो जाएगी। इसलिए वह कुछ नहीं बोला। यह देख कर घर में रोना पीटना मच गया। शङ्कर भी उनके साथ मिल कर रोने लगा। उसका रोना देख कर लोगों ने समझ लिया कि दामाद मर गए। इसी लिए दुःख के कारण शङ्कर हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे रहा है।

सब लोगों ने लड़की को घेर लिया और उसका मङ्गलसूत्र काट कर रोते हुए कहा-"बेटी, तुम्हारे भाग्य में विधाता ने यही लिखा था।"

शङ्कर यह सब कुछ न समझ सका। और चुप चाप अपने गाँव को वापस आ गया। फिर उसने अपनी



मालकिन को सारी बातें कह सुनाई। जब मालकिन ने सारी बातें सुनी तो सिर पीट लिया; शङ्कर को खूब मारा और फिर कहने लगी-"आजसे तुमको कहीं बाहर नहीं भेजेंगे, यहीं पड़े-पेड़ मर जाओ।" उसने तुरन्त अपने समधी को खबर मेजी, कि यहाँ सब सकुशल हैं। उस बावले शङ्कर की बातों से यह सब अनर्थ हुआ।" यह समाचार सुन कर वहाँ के सभी लोग हँसी को न रोक सके।

और कुछ दिन बीत गए। हनुमान अपनी स्त्री और बेटे के साथ अपने समधी के गाँव जाने लगा। घर की रक्षा के लिए उसने शङ्कर को वहीं छोड़ दिया। चलते

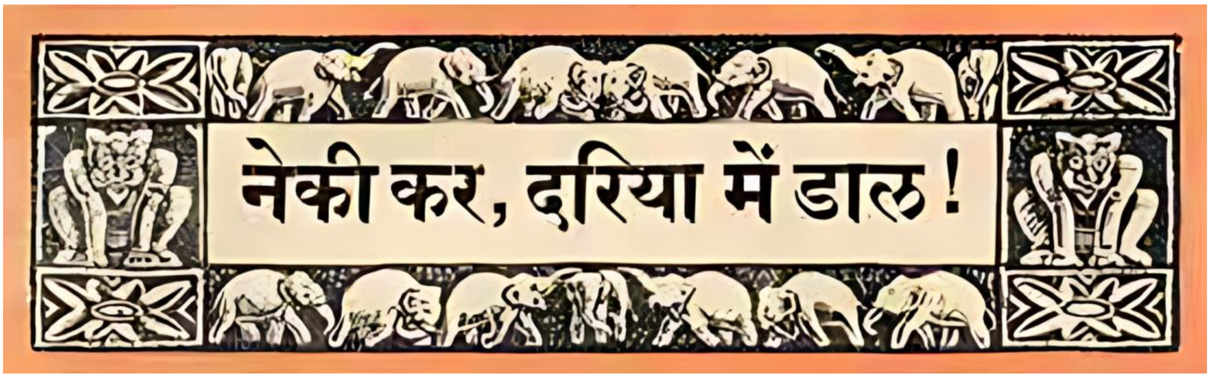
समय उसने शङ्कर से कहा-"देखो, शङ्कर! हमारे आने तक घर की देख-भाल बहुत होशियारी से करते रहना। देखो, घर के अन्दर एक चींटी भी न घुसने पाए।"

हनुमान के चले जाने के दूसरे दिन शङ्कर बरामदे में लेटा था। उसी समय दीवार पर से चींटियाँ निकलने लगीं। शङ्कर सोचने लगा-"मालिक ने कहा था कि घर में एक चींटी भी न घुसने पाए; अब तो ये हजारों चींटियाँ घुस रही हैं। क्या करूँ ?" उसी समय उसको एक उपाय सूझ गया। वह उन चीटियों को एक-एक करके मारने लगा। फिर भी जाने कहाँ से चींटियों की एक बाढ़-सी उमड़ी आ रही थी। तब उसने सोचा-"इन सबों को एक साथ ही मार डालना चाहिए। यह निश्चय करके उसने घर में ही आग दी। घर में आग लगते ही फट फट की आवाज़ सुन कर शङ्कर को बड़ी खुशी हुई, कि चींटियाँ मरते समय हा-हाकार कर रही हैं। सारा घर जल-भुन कर राख हो गया।

दो दिन के बाद हनुमान घर वापस आया, तो देखा कि घर जल कर राख का ढेर बना हुआ है। यह देख कर हनुमान को बहुत गुस्सा आया; उसने शङ्कर को खूब मारा और पूछा-"बता! घर में आग कैसे लगी?" तब शङ्कर ने चीटियों की कहानी कह सुनाई।

यह सुन कर तो हनुमान के गुस्से की सीमा न रही। उसने शङ्कर से कहा-"अरे, महामूर्ख, इतने दिनों तक हम तेरी गलतियाँ बर्दाश्त करते आए। यही हमारी बेवकूफी थी। जिसका अब यह फल भोगना पड़ रहा है। जा! हमारे सामने से दूर हो जा !" यह कह कर उसे वहाँ से भगा दिया।





एक गाँव में मातादीन नाम का एक किसान रहता था। उसके तीन लड़के थे।

एक दिन उसने अपने तीनों बेटों को बुला कर अपनी सारी सम्पत्ति और नकद रुपया पैसा तीनों में बराबर-बराबर बाँट दिए। लेकिन एक कीमती हीरा उनको दिखा कर कहा-"यह हीरा तुम तीनों में, मैं उसी को दूँगा, जो मेरे जीते जी मेरे सामने ही कोई बड़ा नेकी का काम कर दिखाए।" दिन बीतने लगे। एक दिन एक बेटे ने आकर कहा-"पिताजी, वह हीरा मुझे दे दीजिए।" बुढ़े मातादीन ने पूछा-"किस लिए ? तुमने क्या नेकी का काम किया है ?" तब लड़के ने जवाब दिया-"एक आदमी ने यात्रा पर जाते समय मेरे पास पाँच हजार रुपए अमानत रखे थे; न उनके लिए कोई गवाह था और न कोई कागजी सबूत। लेकिन उस आदमी के वापस आ जाने पर मैने उसके रुपए उसे लौटा दिए। अगर मैं उसको रुपए न देता, तो वह मेरा कुछ नहीं कर सकता था। इससे बड़ा नेकी का काम और क्या होगा ?"

तब बूढ़ा मातादीन हँस कर बोला-"यह नेकी का एक साधारण सा काम है। इसका कोई खास महत्व नहीं। इससे इतना हुआ, कि तुम एक पाप करने से बच गए। फिर भी अगर तुम्हारे दूसरे भाइयों ने मेरे जीते जी इससे बड़ा कोई नेकी का काम न किया, तो मैं मरते समय यह हीरा तुम्हीं को दे जाऊँगा।"

कुछ दिन बाद दूसरा लड़का आया, और मातादीन से बोला-"पिताजी, अब वह हीरा मुझे दो।" मातादीन ने पूछा-"किस नेकी के काम के बदले ?" तब लड़के ने जवाब दिया-"नदी में बाढ़ आई हुई थी; पुल पर यात्रा से चलते हुए सहसा एक लड़का उस में गिर

अब्दुल रशीद

पड़ा। माँ-बाप और बहुत से आदमी वहाँ खड़े थे, पर किसी को उसे निकाल लाने का साहस न हुआ। मैंने अपनी जान की परवाह न की और नदी में कूद कर उस लड़के को निकाल लाया।" बूढ़े ने कहा-"बेटा, यह कोई बहुत बड़ा नेकी का काम नहीं, यह तो मानव होने के नाते तुम्हारा कर्तव्य और उसका पालन है; फिर भी अगर तुम्हारे तीसरे भाई ने इससे बड़ा काम न किया तो मैं यह हीरा मरते समय तुमको ही दे जाऊँगा।" ऐसा कह कर उसने दूसरे लड़के को विदा कर दिया।

और कुछ दिन बीत गए। एक दिन तीसरा लड़का आया, और बाप से पहले दोनों भाइयों के समान हीरा तो नहीं माँगा, लेकिन जो काम उसने किया था उसका वर्णन करने लगा-"पिताजी, मेरा एक जानी दुश्मन कल शराब के नशे में झूमता एक ऊँची पहाड़ी पर इस तरह खड़ा था कि वह जरा मी हिलता डुछता तो उस ऊँची पहाड़ी पर से गिर कर मर जाता। अपना जानी दुश्मन जानते हुए भी; मैंने उसको अपने कन्धे पर उठा लिया और उसे उसके घर पहुँचा आया। अपना मुँह छिपाने के लिए मैंने एक कपड़ा बाँध लिया था, कि अगर वह होश में आ जाय और देखे तो उसको लज्जित न होना पड़े।" ऐसा कह कर बह जाने लगा तो बूढ़े ने उसे रोका और कहा-"बेटा, लो यह हीरा मैं तुम्हें देता हूँ। दोनों भाइयों ने जो काम किए, वह केवल हीरा पाने के लिए। लेकिन तुम ने सच्ची नेकी का काम किया है। सच्ची नेकी वही है जो निष्काम होकर, दुश्मनों और बुरे आदमियों के साथ की जाय।" यह कह वह हीरा उसे दे दिया।





करीब चार सौ बरस के पहले मसूर राज्य में एक पुरुषोतम नाम का राजा राज करता था। वह गंगू वंश में पैदा हुआ, और गौरवान्वित शासक था। उसने विवाह नहीं किया था। जब तक उसके लायक कन्या न मिले तब तक विवाह न करने की उसने प्रतिज्ञा की थी।

उस समय काँचीपुर के काँची राज के एक लड़की थी। वह त्रिलोक सुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध थी। सचमुच उसके समान तीनों लोक में और कोई सुन्दरी नहीं थी। लोगों में यह बात धीरे-धीरे फैलने लगी, कि काँची राज की वह अलौकिक सुन्दर राजकुमारी ही पुरुषोत्तम के लायक है।

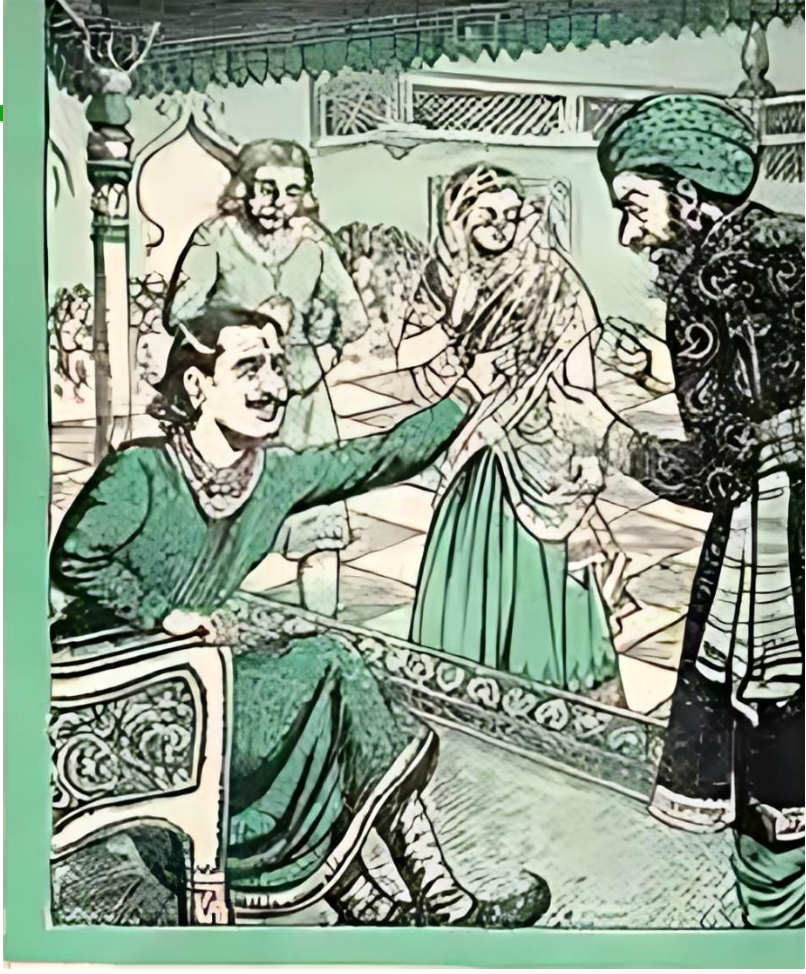
यह बात पुरुषोत्तम के बाप के कानों में भी पहुँची। उसने फौरन अपने पुरोहित को काँची राज के पास भेजा और विवाह की बात-चीत आरम्भ कर दी। विवाह की तैयारी होने लगी। काँची राज ने मैसूर महाराज के गौरव के लायक सब तरह की तैयारी की, और पूछ-पूछ करके उन के भोग-विलास की समस्त सामग्रियाँ जुटाई।

पुरुषोत्तम बड़े वंश में पैदा हुआ था, बड़े वंश का बालक था। इसलिए वह शाक्ति-सामर्थ्य से भरा पूरा था। सब से बड़ी बात तो यह थी कि वह बहुत उदार हृदय युवक था। उस समावेश में पुरुषोत्तम ने काँची राजकुमारी को देख भी लिया, और परस्पर दोनों ने एक दूसरे को पसन्द भी कर लिया था।

इस प्रकार सब तरह से अनुकूल और योग्य वर के साथ अपनी कन्या का विवाह काँची राज को बहुत प्रियतर मालूम हुआ। पुरुषोत्तम ने भी इस समबन्ध को सब तरह से निश्चित समझा और अपने राज्य को लौट

गया। लेकिन पुरुषोत्तम के चले जाने के बाद काँची राज के मन में सन्देह पैदा हुआ। वह सन्देह क्या था; सो भी सुन लीजिए-

गंगू वंश के राजा लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी से जगन्नाथ जी की पूजा करते आए थे। उस पुण्य क्षेत्र जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ का मन्दिर भी गंगू वंशीय राजाओं ने ही बनवाया था। खुद अपने हाथों से भगवान की सेवा-टहल करना उन का वंशाचार हो गया था।



इस प्रकार वंश परम्परा के अनुसार, पुरुषोत्तम को भी जगन्नाथ के मन्दिर में जाकर उत्सव के समय भगवान की सेवा के रूप में, सोने की झाड़ू से वहाँ झाड़ू लगानी पड़ती थी।

काँची राज को यह बात कुछ सङ्कोचकर और लाँछणायुक्त मालम हुई। उसके मन में एक तरह का द्वन्द्व खड़ा हो गया। एक झाड़ू लगाने वाले के साथ वह अपनी कन्या की शादी करे? उसे यह अपमानजनक मालूम हुआ। अतएव उसने निश्चय कर लिया, कि वह उसे अपनी लड़की नहीं देगा। यह खबर पुरुषोत्तन के पास पहुँचा दी गई।

काँची राज ने जो खबर भेजी थी, वह कान में पड़ते ही पुरुषोत्तम का पौरूष धग घग करके जल उठा। उसने सोचा-"इस तरह मेरा अपमान करके, तो उसने भगवान जगन्नाथ का ही अपमान किया।" काँची- राज से इसका बदला लेने का दृढ़ सङ्कल्प उसने कर लिया।

पुरुषोत्तम के यह सङ्कल्प करते ही कुछ दिनों के बाद गंगू की सेना ने जाकर काँची- राज्य को घेर लिया। लेकिन काँची राज्य मामूली राज्य तो था नहीं। उस युद्ध में उसने गंगू की सेना को बड़ी आसानी से हरा दिया।

पराजित होने पर भी पुरुषोत्तम हतोत्साह नहीं हुआ। इस बार दुगुने उत्साह से और



अधिक सेना जमा करके, उसने युद्ध की तैयारी की। इतनी तैयारी के साथ जो चढ़ाई हुई, उसके वेग को काँची-राज न रोक सका,और वह पराजित हो गया।

जैसे ही काँची-राज हारा, तो बदले की भावना से प्रेरित होकर पुरुषोत्तम ने राजकुमारी को बन्दी बनाने का हुक्म दे दिया।

अब तो वश में आई हुई उस राजकुमारी के साथ व्याह करने में कोई बाधा रह नहीं गई थी। इसलिए लोगो ने सोचा कि अब तो पुरुषोत्तम उसके साथ अवश्य विवाह कर लेगा। लेकिन पुरुषोत्तम तो घृणा की आग से जल रहा था; उस लड़की के साथ विवाह करने की भावना ही उसके मन से काफूर हो गई थी। इसलिए उसने उसकी ओर कभी आँख उठा कर भी नहीं देखा। अपने मन्त्री को बुला कर उसने आज्ञा दी- "किसी झाड़ू लगाने वाले को बुला कर उसके साथ उस लड़की की शादी कर दी जाय।"

क्रोधावेश में दिए गए राज्यादेश का पालन किया जाय या नहीं ? मन्त्री इस विकट उलझन में पड़ गया। लेकिन मन्त्री बहुत बुद्धिमान था। उसने सोचा-"इस विषय में जल्दी नहीं करनी चाहिए। खूब सोच-विचार करना ही श्रेयस्कर है।" यह सोच कर उसने "बहुत अच्छा !" कह कर राजा से विदा ली। उसी क्षण से वह इस चिन्ता में पड़ गया, कि इस लड़की की शादी किस के साथ की जाय। उसने राजकुमारी के रहने लायक एकान्त स्थान में गुप्तरूप से सब प्रकार की समुचित व्यवस्था कर दी थी।

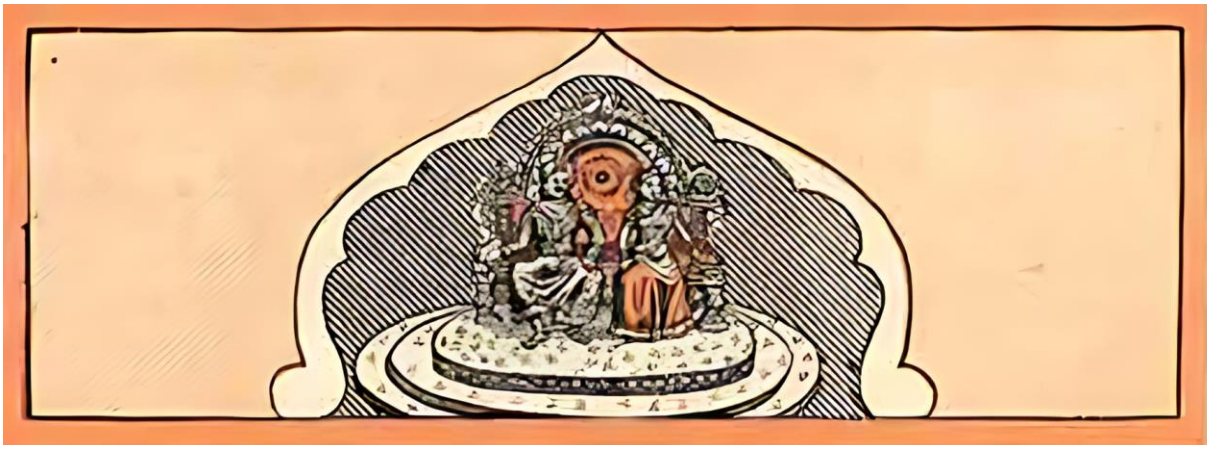
आज्ञा देने के बाद पुरुषोत्तम उस राजकुमारी की सुध ही भूल गया। काँची-राज का क्रोध भी धीरे-धीरे कम हो गया। मिथ्याभिमान के कारण उसने उस समय

जो पुरुषोत्तम का अपमान कर दिया था, उस के लिए उसे घोर अनुताप होने लगा।

कुछ दिनों के बाद, फिर से जगन्नाथपुरी में उत्सव आरम्भ हुआ। अभ्यासानुसार पुरुषोत्तम जगन्नाथ देव की सेवा टहल में मगन हो गया। पुजारी ने राजा के हाथ में सोने की मूठ वाली एक झाड़ू दे दी। वह अत्यन्त भक्ति भाव से भगवान के चरणों के पास झाड़ू लगाने लगा।

उसी समय मन्त्री वहाँ आया और राजा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे सोलह शृङ्गारों से सुशोभित एक आलौकिक सुन्दरी, हाथों में जयमाला लिए वहाँ जा खड़ी हुई। "महराज क्षमादान दीजिए। प्रभु की आज्ञा पूरी करने का समय मुझे अब प्राप्त हुआ है। इस राजकुमारी की प्रतिज्ञा है कि 'श्री जगन्नाथ देव के चरणों की धूल झाड़ कर सेवा टहल करने वाले के साथ ही मैं विवाह करूँगी।' सारी दुनियाँ में ढूँढ़ कर में थक गया, लेकिन इसके लायक ऐसा वर कोई नहीं मिला। इसलिए इस कन्या को में आज फिर उसके मालिक के हाथों में सौंपता हूँ।" यह कह कर मन्त्री पीछे हट गया। तब काँची राजकुमारी ने अत्यन्त भक्ति भावना से पुरुषोत्तम के गले में जय-माला डाल दी। सहसा मन्दिर के ऊपर से पुष्प वर्षा शुरू हो गई।

यह भगवान की महिमा है-यह सोच कर पुरुषोत्तम शादी करने को तैयार हो गया। काँची राजा भी उसी समय मुक्त होकर वहाँ आ गया। फिर पुरुषोत्तम और काँची राजकुमारी का विवाह अत्यन्त धूम-धाम से हुआ। इस विवाह से राजा और प्रजा में अत्यन्त खुशी छा गई और मन्त्री के बुद्धि-कौशल की प्रशंसा घर-घर होने लगी।



CHANDAMAMA (Hindi) MARCH 1954 Regd. No. M. 5452



रङ्गीन चित्र कथा, चित्र–२